❁ श्री ❁

स्वामी रामतीर्थ ।

उनके सदुपदेश—भाग १३ ।

प्रकाशक—

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ ।

प्रथम संस्करण २००० } —— { जनवरी १९२२ माघ १९७८

मूल्य डाक व्यय रहित ।

साधारण संस्करण ॥=) } फुटकर { विशेष संस्करण १।)

विषय-सूची।

विषय	पृष्ठ
सुलह कि जंग ? गंगा-तरंग	१
आनन्द	७२
राम परिचय	१३१

Printed by Ram Shanker Bajpai, at the Lucknow Steam Printing Press, Lucknow.

1922.

❋ निवेदन ❋

ईश्वर का धन्यवाद है कि अपनी प्रतिज्ञानुसार हम ग्रन्थावली का तेरहवां भाग अर्थात् नये वर्ष का प्रथम नम्बर मास जनवरी के भीतर २ पूर्ण करके आप की सेवा में भेज सके हैं। ईश्वर ने चाहा और आप राम-प्यारों से सर्व-प्रकार से उत्साह मिलता रहा तो पूर्ण आशा है कि लीग अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रत्येक भाग दो२ मासके पश्चात् इसी प्रकार आप की सेवा में भेजती रहेगी। पाठक गण से विशेष इतनी ही प्रार्थना है कि वे ग्रन्थावली के स्थाई ग्राहकों की संख्या को बढ़ाते रहने की कृपा निरन्तर करते रहें, जिससे लीग अपने कर्तव्य में सफल हो।

स्थाई ग्राहकों के लिये नये वर्ष का वार्षिक शुल्क यह है:—

(१) अपना भाग केवल बुक पैकट द्वारा मंगाने वाले से

साधारण संस्करण के	३)
विशेष संस्करण के	६)

(२) अपना भाग रजिस्टर्डबुक पैकट द्वारा मंगाने वाले से

साधारण संस्करण	३।।।)
विशेष संस्करण	६।।।)

जो भी स्थाई ग्राहक बनने की कृपा करें, वे कृपया आज्ञा भेजते समय अपना नाम व पता स्पष्ट और विस्तार से लिखकर भेजें।

मन्त्री

विशेष सूचना।

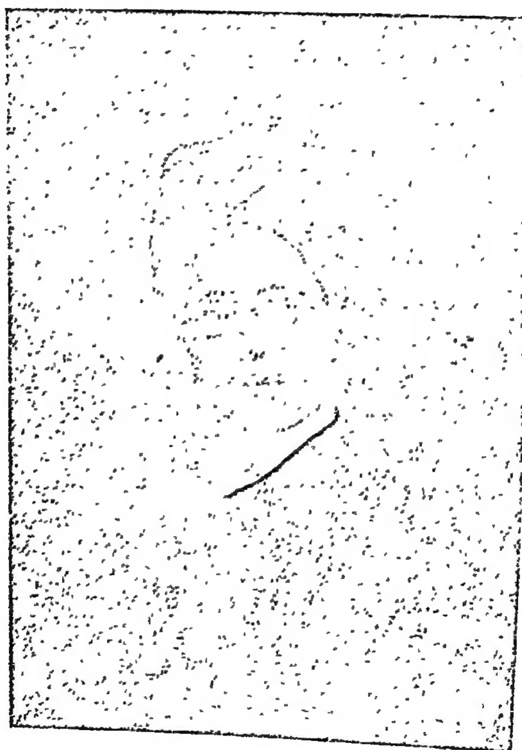
—:※:—

(१) हिन्दी राम वर्षा जो ग्रन्थावली के तीन (७-८-९) भागों में विभक्त होकर प्रकाशित हुई है, उसका फुटकर रूप से दाम विना जिल्द १॥।≈) और सजिल्द २॥≈) पड़ता है। परन्तु इन तीनों भागों को इकट्ठा खरीदने वाले के लिये अब दाम सजिल्द २) और विना जिल्द १॥।) कर दियागया है। भजनके प्रेमियों को यह शुभ अवसर दिया गया है कि इसके उपयोग से लाभ उठावें और शीघ्र इन कापियों को मंगायें।

(२) श्री मद्भगवद्गीता के समुच्चय उपदेश को एक रामभक्त ने बहुत संक्षेप से अति मधुर अंग्रेजी भाषा में व्यावहारिक गीता (Practical Gita) के नाम से लिखा है। और छोटी पॉकट-बुक के आकार में घटिया और बढ़िया कागज पर प्रकाशित किया है। घटिया विना जिल्द और बढ़िया सजिल्द है। मूल्य घटिया कापी ।) और बढ़िया ॥)। है। यह पुस्तक भी लीग से मिल सकती है।

प्रबन्धक (मैनेजर)।

श्री स्वामी रामतीर्थ।



अमरीका १९०३



स्वामी रामतीर्थ

सुलह कि जंग ? गंगा-तरंग

(पूर्व अंक के पृष्ठ ६५ से आगे)

बहुत भारी शंका—टेनिसन (Tennyson) ने एक स्थान पर लिखा है—

I am a part of all that I have met. अर्थात् "जो कुछ मैंने देखा या सुना मैं स्वयं उसका एक उत्तमांग था।" निस्संशय यह वाक्य तो स्वीकार-योग्य है; क्योंकि कोई वस्तु अनुभव नहीं हो सकती जब तक कि हम उसके अस्तित्व में एक वृहत् अंश (अर्थात् ज्ञाता) न बनें। किंतु तुम्हारा यह कहना कि जो दिखाई देता है, सब "मैं ही मैं हूँ" विश्वास का पल्ला तोड़ता है। देखिए! वस्तुओं के दृष्टिगोचर होने में न केवल तुम्हारा देखना आवश्यक है, वरन् तुम्हारे शरीर से बाहर किसी अस्तित्व का विद्यमान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि सम्मुख कुछ न होगा, तो तुम्हें पत्थर, नदी, मकान आदि कभी दृष्टिगोचर न होंगे। यदि तुम्हारी श्रवणशक्ति पर कोई बाहर से

प्रभाव डालनेवाली शक्ति विद्यमान न होगी, तो लाख कान खोल खोलकर पड़े ध्यान धरो, कुछ सुनाई नहीं देने का; यदि तुम्हारा ही ख़याल सब कुछ है, तो पानी का ध्यान जमाने से प्यास क्यों नहीं बुझा लिया करते? प्रकृति का नियम है कि जब कहीं किसी प्रकार की क्रिया (action) होती है, तो साथ उसकी प्रति-क्रिया (re-action) भी अवश्य होती है। जब तुम पत्थर को दबाते हो, तो उधर आपकी अँगुली भी उतनी ही दबती है। घोड़ा गाड़ी को चलाता है, गाड़ी घोड़े के अंगों और नसों को हिलाती और शिथिल कर देती है, झट थका देती है। रगड़ से जब आग निकलती है, तो दियासलाई डिबिया की रेग पर काम करती है, डिबिया की रेग दियासलाई पर वैसी ही प्रतिक्रिया करती है। एक हाथ से ताली भी तो नहीं बजा करती। कुरसी तुम्हारे शरीर पर काम कर रही है, गिरने से रोक रही है, दबाव के कारण तुम कुर्सी पर प्रतिक्रिया कर रहे हो, उसे कमज़ोर और ढीला कर रहे हो।

गर हुस्न नहीं, इश्क़ भी पैदा नहीं होता।
बुलबुल गुले-तस्वीर पै शैदा नहीं होता॥

रंग-रंग के चित्र-विचित्र पदार्थ दिखाई देने में भी (action) क्रिया और (re-action) प्रतिक्रिया दोनों का होना आवश्यक है। यदि कान, आँख, नाक आदि पर बाहर से कुछ प्रभाव न पड़े, तो भी कुछ अनुभव न होगा। और यदि भीतरी शक्ति काम न करे, तो भी भाँति २ की वस्तुएँ महांधकार में रहेंगी। जैसे इधर डिबिया की रेग और उधर दियासलाई के मसाले की रगड़ से आग प्रकट हो आई, वैसे ही यह सरू का बूटा सरू के रूप में बाहर और भीतर से क्रिया और प्रतिक्रिया की बदौलत मौजूद हो आता है।

राम—आपके मुख में गुलाब देकर बात काटता है-नहीं, आपकी बात को पूरा करता है। सुनिये; शक्ति की खान, या इनर्जी (चेतनता) के स्रोत को "चेतन" नाम दिया गया है।

ईद का चाँद चांद के रूप में तब प्रत्यक्ष होता है, जब मेरा ख़याल वहाँ लड़ता है, किंतु ख़याल लड़ने से पहले चाँद के स्थान पर कुछ न कुछ अवश्य था, जिसने दृष्टि पर प्रभाव डाला।

क्या वह चाँद था? कदापि नहीं; चाँद तो ख़याल लड़ने के पीछे प्रकट हो आया, ख़याल लड़ने से पहले इसके अस्तित्व के विषय केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह प्रभाव (तासीर या संस्कार) का स्रोत है, अतः इसको चेतन कहना ठीक है (ईद का कारण तो चेतन ही है)।

इस तरह मन्दिर मन्दिर के रूप में तब विद्यमान होता है, जब तुम्हारी ओर से प्रतिक्रिया (re-action) ध्यान के रूप में होती है, नहीं तो वस्तुतः पहले चेतन ही चेतन है।

कीर्तन कीर्तन के रूप में कब पैदा हुआ? जब तुमने ख़याल का श्वास फूँका। क्या पहले यह नहीं था? नहीं; कर्मकर्ता चेतन ही चेतन था।

सुमन और सुगन्ध सुमन और सुगन्ध के रूप में कब प्रत्यक्ष हुए? जब तुमने सूँघा, अन्यथा वास्तव में चेतन ही चेतन था।

सेब और अंगूर सुस्वादु कब थे? जब तुमने ध्यान किया, अन्यथा चेतन ही चेतन है।

रेशम इतना नरम और साफ़ कैसे हुआ? तुम्हारे स्पर्श के कारण, अन्यथा चेतन ही चेतन है।

प्रश्न—माना कि हमारे ध्यान देने के बाद चाँद या गंगा दृष्टिगोचर हुई, किंतु हम क्योंकर कह सकते हैं कि चाँद और गंगा पहले से ही विद्यमान न थे ?

उत्तर—पदार्थ पदार्थ के रूप में तब उपस्थित हुआ जब बाहर से चेतन की क्रिया का तुम्हारे भीतर से (ध्यान और वृत्ति के रूप में) उत्तर मिला। जैसे शीशे में छाया केवल तब प्रत्यक्ष हुई जब शीशे में मुँह देखा गया। शीशे में मुँह न देखने से पहले तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि दर्पण में कपोलों के अस्तित्व की कल्पना कर लो।

पंजाब के एक गाँव के बाहर रात के समय देहाती लड़कों ने खेलते खेलते बाज़ी बदी कि जौनसा लड़का इस समय मरघट में जाकर एक खूँटी गाड़ आए, उसकी बहादुरी मानेंगे। एक बनिए का लड़का शेखी के मारे तैयार हो गया और मरघट की ओर चला। चला तो सही, पर मारे भय के जान मुट्ठी में आ रही थी। हृदय धड़क रहा था। पहले तो समाधियों (क़बरों) के कुत्तों को अँधेरे में देखकर डरा, जंगल की सनसनाहट से भयभीत हुआ। फिर जब लकड़ी (खूँटी) को पत्थर से ठोंकने लगा, तो भय और गड़बड़ाहट ने व्याकुल कर दिया था, उसकी धोती का पल्ला खूँटी की नोक में फँस गया। खूँटी को ठोंकते ठोंकते धोती भी भूमि में धँसती गई। जब अत्यंत शीघ्रता से लौट जाने को उठा, तो कपड़ा बड़ी कड़ाई से खिंचा। भ्रम से भयानक रूप तो पहले ही आँखों के सामने नाच रहे थे कपड़ा पकड़ा गया देखकर विवश हुआ चिल्लाने लगा, ज़ोर से चीखें मारने लगा, पर मुँह से केवल भू......भू......ही निकला था कि मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह भूत बाहर से आया कि भीतर से ?

ऐ शरीर ! भूत का स्वामी (शिवशंकर) तू ही है । जिस तेरी आँख से उत्पन्न हुआ, तेरे संकेत से विद्यमान हुआ है, कपड़ा भी किसी अन्य ने नहीं पकड़ा, तू ने स्वयं भूमि में गाड़ा है, अपनी की हुई करतूत पर हल्ला मचाना क्या अर्थ रखता है ? यह हाल उन लोगों का है जो अज्ञान की अँधेरी रात में विषयों की समाधियों पर शेख़ी (vanity) के मारे खूँटी गाड़ना चाहते हैं, भीतर से चित्त विस्मित हुआ जाता है, इन्द्रियाँ शिथिल हुई जाती हैं, तथा उधेड़ बुन में हैं, पर बाहर से चोट पर चोट लगाए जाते हैं, मोह और काम की खूँटी गाड़े जाते हैं, यह देखते ही नहीं कि ऐसा करने से अपनी सच्ची प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला रहे हैं और अपने आप को स्वयं बन्धायमान कर रहे हैं । पत्तों की खरखराहट से, हवा की सरसराहट से दम में दम नहीं रहने पाता । कभी कभी चौंक पड़ते हैं " हाय राम ! हे भगवान् ! मारे गए ! लूटे गए !" और विषयों के समाधिस्थान (क़ब्रस्तान) से लौटते समय तो मानों भारी घसीट और रगड़ से दुःख पाते हैं ।

ऐ अज्ञान के उत्तराधिकारियो ! तुम अपने ही भ्रम की कील से मत जकड़े जाओ । तुम्हें कोई खींचनेवाला नहीं । यह पंचभूत (पंचतत्त्व) तुम्हारे बनाए हुए हैं । झिझक और भय को दूर कर दो, तुम्हारे खूँटी गाड़ते गाड़ते भूत प्रत्यक्ष होता गया, पहले कोई भूत न था ।

प्रश्न—जब हमने देखा, तो चाँद या गंगा दिखाई दिये, अब क्या हम अनुमान से नहीं कह सकते कि वहाँ पहले भी चाँद और गंगा ही मौजूद थे ?

उत्तर—अनुमान यहाँ क्योंकर चल सकता है, व्याप्ति

(middle term) कहाँ से लाओगे ? उदाहरण कैसे उत्पन्न करोगे ? जो वस्तु है, वही चेतन है, तुम्हारे देखने से वस्तु बनी है।

प्रश्न—आप क्योंकर कह सकते हैं कि यह दीवार मेरे ख़याल (प्रतिक्रिया) के कारण बनी है, और केवल दृष्टि-सृष्टि ही है ? "दृष्टिरेव सृष्टिः"। मैं इसको हाथ से अनुभव कर सकता हूँ, इसे थपकार कर आवाज़ सुन सकता हूँ, जीभ से चाट सकता हूँ, नाक से सूँघ सकता हूँ।

उत्तर—आँख की राह तुम्हारी वृत्ति दीवार का रूप बनती है, त्वच् के रूप में तुम्हारी वृत्ति कोमल या कठोर-पन हो आती है। श्रोत्र के रूप में तुम्हारी वृत्ति दीवार की आवाज़ बन निकलती है, घ्राण की अवस्था में तुम्हारी वृत्ति ही गन्ध अनुभूत होती है, इसी प्रकार रस रस के रूप में बाहर से नहीं आता।

प्रश्न—यदि हमारे ख़याल से सब प्रकट हो आता है, तो हम जहाँ चांद देख रहे हैं, हमारे कहने से वहाँ सूर्य क्यों नहीं दिखाई दे देता ? जिसको आज हमने कालिज देखा है वह कल गंगा क्यों नहीं नज़र आता ?

उत्तर—(१) यही तो आप कहते हैं न, कि "जिस स्थान पर चाँद नज़र आता है, उस स्थान पर सूर्य क्यों नहीं दिखाई देता ?" इस वाक्य (proposition) का तनिक व्यवच्छेद (analyze) कीजिये। आपके इस वाक्य से स्पष्ट पाया जाता है कि "स्थान" (देश) हमारे विचार से बाहर कोई वस्तु है, स्थान को आपने पृथक् काग़ज़ समान स्वीकार किया है, जिसपर ख़याल के चित्र हमारी वृत्ति (समस्त) से निकल सकते हैं।

इसी प्रकार "जो आज कालिज है, वह कल गंगा क्यों नहीं हो जाता ?" इससे स्पष्ट है कि आपने काल (आज या कल आदि) को हमारे अधिकार से बाहर स्वीकार किया है और केवल संकल्पित पदार्थों का हमारे ख़याल में होना माना है।

अतः यह प्रश्न आपका स्पष्ट कर रहा है कि आपने वेदान्त के सिद्धान्त को समझा ही नहीं। वेदान्त तो यह बताता है कि न केवल चाँद व सूर्य और कालिज व गंगा मेरे अन्तःकरण से निकलते हैं; वरन् स्वयं देश और काल भी मेरी दृष्टि-सृष्टि प्रत्यक्ष हैं।

अपनी ओर से तो आपने वेदान्त का सिद्धान्त (मन्तव्य) अतीव असंगत (preposterous) समझकर प्रश्न किया था, किन्तु इस प्रश्न से आपकी भ्रांति टपकती है। यह भ्रांति नहीं कि आपने जो वेदान्त के मत (सिद्धान्त) का अटकल (तख़मीना) लगाया, वह असली सिद्धान्त से अधिक है; वरन् भूल यह है कि आपका अटकल सच्चे सिद्धान्त से बहुत ही कम है, और इसी भ्रांति पर निर्भर आपका प्रश्न है। यदि वेदान्त का सिद्धान्त वास्तव में वैसा ही परिच्छिन्न (देश-काल के बन्दीघर के भीतर स्वाधीन होने का) हो, जैसा कि आपके ध्यान में आया है, तब तो आपका प्रश्न चल सकता है; किन्तु इस तत्त्व के साम्राज्य में तो चूँ, चरा (क्यों, कब) की गति नहीं।

वेदान्त यह उपद्रव नहीं करता कि सर्वशक्तिमान् का अर्थ करे वह देश-काल से परिच्छिन्न जीव जो अन्य (देशकालानवच्छिन्न) सजातियों पर मेट (Mate) का अधिकार रखता हो। मैं तो वह सर्वशक्तिमान्, अपरिच्छिन्न,

पवित्र परमात्मा हूँ कि न केवल चाँद सूर्य गंगा कालिज आँख की झपक में उत्पन्न करता हूँ, वरन् इनका आदि अंत, अन्य शरीर और उनके पारस्परिक संबंध, तथा ये सब प्रश्न और उत्तर, समस्त देश-काल, क्यों और कब, मैं ही मैं हूँ। आश्चर्य और विस्मय-स्वरूप यह सब संसार मेरा चमत्कार है।

इस रहस्य को न समझने का कारण प्रायः यह होता है कि शब्द "मैं" का लक्ष्यार्थ सर्व साधारण की समझ में झटपट नहीं आता; बेर बेर इस शब्द "मैं" के अर्थों में गड़बड़ कर जाते हैं। "मैं" का अर्थ जूती और पगड़ी के बीच में विद्यमान नहीं है। "मैं" की सीमा साढ़े तीन हाथ नहीं, "मैं" की चौहद्दी निस्सीम है। जैसे स्वप्न में इस "मैं" के भीतर इधर एक व्यक्ति भिक्षुक या सम्राट बन जाता है (व्यष्टि), उधर देश, मैदान, पर्वत और नदी उपस्थित हो जाती है (समष्टि); वैसे जाग्रत् में इस एक "मैं" के भीतर इधर (subject) एक व्यक्तिपन (individual) प्रकट हो आता है, उधर सारा संसार प्रकट हो आता है (object)। इधर देश काल वस्तु (Forms of thought) एक व्यक्ति मात्र (subject) के भीतर (मस्तिष्क में) उग पड़ते हैं, उधर संसार-भर में मौजूद हो आते हैं।

स्वप्न में यदि आप सिंह से दब जाते हो, तो क्या सिंह आपका स्वप्न-विचार नहीं था? इधर अधीन (दबा हुआ) शरीर आपका ख़याल था, उधर आक्रमणकारी सिंह आपका स्वप्न था। वस्तुतः आपके अपने आप में सब कौतुक कल्पित है। जागो अपने आप में तुम्हीं सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, चेतन, देश काल के कर्ता-हर्ता हो।

प्रश्न—बात-बात में आप तो एक स्वप्न का उदाहरण ठूँस देते हैं। योरपियन फ़िलॉसफ़र तो इसको पसंद नहीं करते।

उत्तर—अच्छा! हम स्वप्न की चर्चा न किया करेंगे। आप और आपके गुरु योरपियन पण्डित स्वप्नावस्था में प्रतिदिन निरन्तर मारे-मारे फिरना ही बन्द कर दें।

बड़े आश्चर्य की बात है। आठ नौ बजे तक तो प्रतिदिन स्वप्न में झूँठ को सच मानकर कहीं के कहीं व्याकुल और फ़ुटबाल के गेंद की तरह लुढ़कते फिरते हैं, और दस बजे जागकर फिर दूसरे स्वप्न (संसार) के चक्कर में ऐसे फँसते हैं कि बाह्य विषयों (empirical phenomena) की भूलभुलैयां में ग्रस्त होकर एक वास्तविक बात (stern reality, solid fact) का नाम लेना भी अंगीकार नहीं कर सकते। स्वप्न में यदि ऐसा मालूम हो जाय कि यह स्वप्न है, तो वह स्वप्न नहीं रहता, जाग आ जाती है। सर्व-साधारण योरपियन लोग और उनके चेले चांटे कुछ हिंदू यदि इन्द्रिय-जन्य विषयों के स्वप्न और ख़याल मात्र होने का चर्चा सुनकर हँस देते हैं, तो उसके यह अर्थ हैं कि उनको जागना बुरा जान पड़ता है। स्वप्न का शौक़ बनने में स्वाद लेते हैं, रात से विशेष प्रेम रखते हैं, और अँधेरे में चलना-फिरना पसंद करते हैं।

आधे संसार पर सब समय रात रहती है, और आधे जगत् में दिन। दूसरे शब्दों में आधा जगत् प्रति समय स्वप्न में रहता है। और स्वप्न और सुषुप्ति का साम्राज्य विश्वव्याप्त होने से कुछ संशय नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है कि योरपवालों ने आत्मा का तत्त्व वर्णन करते समय

स्वप्न और सुषुप्ति को किसी गणना और पंक्ति में नहीं लिया, और अपूर्ण (hypotheses, data) बुन्याद पर अपने पुराने तत्त्वज्ञान को चलाना चाहा है। प्रश्न की शर्तों को अधूरा रखकर तात्विक ग्रन्थि को हल किया चाहते हैं। जाग्रत् के स्थूल शरीर और प्रत्यक्ष संसार में पाश्चात्य लोगों की दौड़-धूप निस्संदेह एक दृष्टि से प्रशंसा-योग्य है, किंतु मानसिक संसार और सूक्ष्म शरीर में उनके अनुसंधान का बहुत कम प्रवेश है। आत्म-अनुभव और आत्म-साक्षात्कार का उनके यहाँ पता नहीं मिलता। धर्म का पैग़म्बर (Prophet) योरप में अभी तक एक भी उत्पन्न नहीं हुआ। संसार के जितने धर्म के पैग़म्बर (नेता वा संस्थापक) हैं, सब के सब एशिया से ही निकले हैं।

निदान, विशेष समयों पर सच तो प्रत्येक की जिह्वा से निकल ही जाता है। शेक्सपीयर (Shakespeare) कहता है—

"We are such stuff as dreams are made of"

अर्थात् हम उस तत्त्व से बने हुए हैं जिससे स्वप्न बने हैं।

टेनिसन (Tennyson) लिखता है—

Dreams are true while they last, and do we not live in dreams?

अर्थात्—स्वप्न सच्चे या असली होते हैं, जब तक कि वे रहते हैं (अर्थात् जब तक स्वप्न की अवस्था वर्तमान रहती है, वह स्वप्न सच्चा वा असली ज्ञात होता है) और क्या हम स्वयं स्वप्न में नहीं रहते?

प्रश्न—देश, काल, वस्तु तो नित्य और स्थिर हैं। अन्य वस्तुएँ परिवर्तित होती हैं, ये परिवर्तित नहीं होते।

शेष सब वस्तुयें देश, काल, वस्तु के द्वारा वर्णन की जाती हैं। सब व्यवहार इत्यादि का निर्भर इन्हीं पर है। आप देश, काल, वस्तु को अन्य वस्तुओं के समूह में क्यों गणना करते हैं ?

उत्तर—आप यह बतलाइए, तुम्हारे देश, काल, वस्तु का नित्य और स्थिरपन स्वप्न और सुषुप्ति में कहाँ जाता है ? जाग्रत् के अनुभव को सत्य स्वीकार करते हो, पर क्या सुषुप्ति तुम्हारी वैसी ही, वरन् जाग्रत् से भी बढ़कर बलवान्, अवस्था नहीं है ? सुषुप्ति का तुम पर क्या अधिकार नहीं है ? जितनी देर जाग्रत् अवस्था रहती है, लगभग उतनी ही देर सुषुप्ति का राज्य रहता है। बाल्यावस्था का काल तो सब का सब एक लंबी सुषुप्ति होता है, मृत्यु के पश्चात् बहुत देर सुषुप्ति का राज्य रहता है। इस सुषुप्ति के अनुभव को किसी गणना-पंक्ति में न लाना न्याय की हत्या करना है। सुषुप्ति तुम्हारी मुश्कें कसकर, हाथ-पाँव बाँधकर यह पाठ नित्य पढ़ाती है कि देश काल वस्तु सत्य नहीं, सत्य नहीं, केवल देखने मात्र के हैं, दिखावटी हैं।

पोल निकाल्यो जगत् का, सुषुप्त्यवस्था माहिं।
नाम रूप संसार की, जाहि गंध भी नाहिं॥

यदि स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभव को आप जाकर कह देते हो कि यह झूठ है, तो जाग्रत् के अनुभव को भी झूठ कह देना आवश्यक है; क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति के विश्वास से यह भी उड़ जाता है। जाग्रत् का जगत् यदि सच्चा होता, तो सुषुप्ति अवस्था में भी बना रहता, क्योंकि "सत्य तो वह है जो सदा एक रस, स्थिर और विद्यमान रहे"।

"एकरूपेण ह्यवस्थितो योऽर्थः स परमार्थः।"
(शांकर शारीरिक भाष्य २-१-११)

यह जो आपने कहा कि अन्य वस्तुओं की अपेक्षा देश काल वस्तु नित्य और स्थिर हैं, इसी से तो कैंट (Kant) ने सिद्ध किया है कि देश, काल, वस्तु केवल कल्पित (खयाली) हैं। हाँ यदि व्यवहार में इनको अन्य पदार्थों की अपेक्षा नित्य और स्थिर मान लिया जाय, तो उसपर सुनिएगा—

रेखागणित (Analytical Geometry) में समस्त बिंदु, समस्त रेखाएँ, समस्त धरातल और समस्त पदार्थों के भुजयुग्म सीमाएँ (Coordinates) कल्पित अक्षों (axis) के विचार से स्थिर और नियत होते हैं। सब साध्य और प्रश्न इन्हीं अक्षों पर निर्भर होते हैं। सब प्रश्न इन्हीं अक्षों (axis) की बदौलत हल होते हैं। रेखागणित के समस्त अभ्यास इन्हीं अक्षों पर अवलंबित होते हैं। यह सब कुछ तो सही, किंतु बोर्ड पर डस्टर (झाड़न) फेरा, तो "जित्थे गई सोहनी ओथे महींवाल" मज़ेदार हिंदसों के आकार चित्र-विचित्र वक्र रेखाएँ (Curves), शंकुच्छिन्न (Conic Sections), कातन्वली (Catenary), घाताङ्कगणन (Logarithms) अवलूत, अनवलूत (evoluts, involutes) अर्थात् अनुवक्र कैन्द्रिक, चक्र कैन्द्रिक, सर्पिल (spirals), ये सब के सब अक्षों (ध्रुवों) को अपने साथ ही ले मरे। जहाँ नाव डूबी, खेने के औज़ार चप्पा बाँस आदि भी साथ ही निमग्न।

मेरे प्राणप्रिय! तेरे श्यामसुंदर स्वरूप के बोर्ड पर अविद्या की खरियामट्टी से अनेक प्रकार के रूप (चित्र)

खिंचे हुए हैं, कई प्रश्न हल हो रहे हैं, कई अज्ञात रूप क्ष, त्र, ज्ञ संचित हैं, असंख्य ज्ञात परिमाणों (Known quantities) की भरमार है। अन्ततः हल करते-करते गणित के तत्त्वशास्त्र ने सिद्ध कर दिया है कि—

क्ष (देश) = १
त्र (काल) = १
ज्ञ (वस्तु) = १

हाँ ठीक है, बिल्कुल दुरुस्त है। देश-काल-वस्तु का भेद मुझ देशकालानवच्छिन्न और सर्व-क्रिया-रहित में कहाँ ?—

सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसि।

ऋग्वेद की श्रुति का उपदेश है—"इस वाक्य से सच कहा जाता है, जो कुछ कि यह सब है, यह सब तू है।" अब सुख से बगलें बजाओ, आनंद करो। बोर्ड को साफ़ करो और ध्रुवों (अक्षों) को भी साथ ही मिटा दो। चलो पास ! पास हो गए। धन्य हो ! यद्यपि पास तो पहले ही थे, दूरता का तो पता ही न था।—

ऐ कि उमरे-दर पए ओ मेदवीदम सू बसू।
नागहांनिश याफ़्तम् बादिल निशस्ता रूबरू॥ १॥
आख़िरुल अमरश बदीदम मोतकिफ़ दर कूए-दिल।
गर्चे बिसयारी दवीदम दर पए ओ कूं बकू॥ २॥
दिल गरिफ़्त आराम चूँ आरामे-दिल दर बर गरिफ़्त।
जाँ चूँ जानाँ रा बदीद आसूदा गश्त अज़ जुस्तजू॥ ३॥
ऐ कि उमरे आज़ूए-वस्ले-ओ बूदत चरा।
अज़ पए आँ आरज़ू न गुज़श्ती अज़ हर आरज़ू॥ ४॥
ता बके 'सर चश्मए-ख़ुद रा बगिल अंबाशतन।
जूए-ख़ुद रा पाक कुन ता आयद आबे-आबजू॥ ५॥

आबे-हैवाँ दर दरूँ चाँगे वराए क़तरए ।
रेख्ता दर पेशे-हर नादाँ व दाना आबरू ॥ ६ ॥
मुतरबे-आँ मजलिसी दफ़ रा मनिह हर जा गिरौ ।
तालिबे-आँ बादए विश्कन सुराही-ओ-सबू ॥ ७ ॥
नाज़िरे-आँ मंज़री बरदार अज़ आलम नज़र ।
आशिक़े-आँ शाहदी बरदोज़ चश्म अज़ ग़ैरे-ऊ ॥ ८ ॥
नेस्त बे ओ हेच तावे रुए अज़ वै बर मताब ।
बे वयत चूँ नेस्त आवे दस्त रा अज़ वै मशो ॥ ९ ॥

अर्थ—मैं जो समस्त आयु उसके पीछे हर ओर दौड़ता फिरता था, मैंने एकाएक उसको हृदय में सम्मुख बैठा हुआ पाया ॥ १ ॥

अन्ततः मैंने उसको हृदय के एक कोने में विराजमान देखा, यद्यपि मैं उसके लिये गली-गली बहुतेरा दौड़ा ॥२॥

जब मेरे हृदय ने सुहृत्तम को पार्श्व में पा लिया, तो उसको आनंद मिल गया। और प्राण ने जब (अपने प्यारे) को देखा, तो जिज्ञासा से मुक्ति मिली ॥ ३ ॥

ऐ जिज्ञासु ! तुझे जो समस्त आयु उसके मिलाप (सक्षात्कार) की लालसा थी, तो तूने उस लालसा को पूर्ण करने के लिये क्यों न प्रत्येक लालसा को छोड़ दिया ॥ ४ ॥

तू कब तक अपने स्रोत के मुख को कीचड़ से बंद करता रहेगा (पाटता रहेगा) ? अपनी नहर को साफ़ कर (अर्थात् अपने अंतःकरण को शुद्ध कर) जिससे सब्ज़ी नदी का पानी उसमें आए ॥ ५ ॥

अमृत तेरे भीतर है और फिर तू उसके एक बूँद के लिये प्रत्येक बुद्धिमान् और मूर्ख के सामने अपनी अप्रतिष्ठा कर रहा है ॥ ६ ॥

यदि तू सच्ची सभा का गायक (अर्थात् यदि तू वास्तविक भेद का समाचार देनेवाला) है, तो दफ़ (एक बाजा) को हरएक स्थान पर गिरवी मत रख (अर्थात् प्रत्येक स्थान पर उस वास्तविक भेद का कोलाहल मत मचा) । यदि तू उस (वास्तविक निजानन्द रूपी) सुरा का इच्छुक है, तो (सांसारिक सुरा की) सुराही और मटका तोड़ डाल ॥ ७ ॥

यदि तू उस दृश्य (देखने-योग्य अवस्था) का देखनेवाला है, तो संसार की ओर से मुँह फेर ले । यदि तू उस (वास्तविक) साक्षी (भगवान्) का प्रेमी है, तो जो कुछ उसके अतिरिक्त है, उसकी ओर से आँख सी ले (बन्द कर ले) ॥ ८ ॥

उसके बिना कोई वस्तु ज्योतिर्मय नहीं हो सकती, उसकी ओर से मुँह मत फेर । इस हेतु से कि उसके बिना तेरे लिये कोई ज्योति (या प्रकाश) नहीं, इसलिये उससे हाथ मत धो (अर्थात् अलग मत हो) ॥ ९ ॥

ठोकर खा खा ठाकुर डिठ्ठा ठाकुर ठीकर माँहि ।
ठीकर भजदा टुटदा सड़दा ठाकुर इकसे थाँहि ॥
ठौर ठौर विच ठहरया ठाकुर ठाकुर बाहर नाँहि ।
ठग ठीक ठाकुर ही ठाकुर ठाकुर ही ज्हाँ ताँहि ॥
ठाकुर राम नचावे नाचे वह जाँदा जाँ वाँहि ॥

मान मान मान कहा मान ले मेरा ।
जान जान जान रूप जान ले तेरा ॥
जाने बिना स्वरूप न भ्रम जावेगा कभी ।
कहते हैं बार बार वेद बात यह सभी ॥

नैनन के नैन जो है सो बैनन के बैन है।
जिसके बिना शरीर में न पलक चैन है॥
ऐ प्यारी जान! जान तू भूपों का भूप है।
नाचे है प्रकृति ही सदा मुजरा अनूप है॥

समीक्षक—अभी अभी आपने स्वीकार कर लिया था कि ऐक्शन (क्रिया) और रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) दोनों से संसार आविर्भूत होता है, इससे तो स्पष्ट द्वैतवाद सिद्ध होता है, अब आप आवश्यक परिणाम से भागते हो, एकता ही की बात को दुबाए जाते हो।

राम—हाँ-हाँ! वह प्रसंग पूरा नहीं होने पाया था कि आपने और प्रश्न उपस्थित कर दिए। और—

तुम तो कहते हो रहे पासे अदब लेकिन यहाँ;
हरफ़े-मतलब का ज़ुबाँ पर बार बार आने को है।

अस्तु। अब ऐक्शन और रि-ऐक्शन की दशा सुनो—

ऐक्शन और रि-ऐक्शन सदैव समान और प्रतिरोधी (equal and opposite) होते हैं, बल्कि एक ही होते हैं। कल-शास्त्र के प्रायः प्रश्नों में जिसे एक ओर से ऐक्शन गिना जाता है उसी को दूसरी ओर से रि-ऐक्शन भी गिना जाता है। एक ही घटना या कर्म एक शरीर के विचार से ऐक्शन (क्रिया) कहलाता है और दूसरे शरीर के विचार से रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) नाम पाता है। ऐक्शन (कर्तृप्रधान-क्रिया) और रि-ऐक्शन (कर्म-प्रधान-प्रतिक्रिया) वाले शरीर सजातीय (एक-तत्त्व-विशिष्ट) ही होते हैं। अब संसार जो ऐक्शन और रि-ऐक्शन का फल माना गया है, वह ऐक्शन बाहर से चेतन की ओर से

माना गया है, और रि-ऐक्शन भीतर से कर्ता (subject) की ओर से। यहाँ पर यह आवश्यक उपलब्ध होता है कि ऐक्शन का स्रोत जो चेतन है, तो रि-ऐक्शन का स्रोत भी चेतन ही होना चाहिए।

[मोटा उदाहरण है—संस्कृत भाषण करनेवाला यदि संस्कृत का ज्ञाता है, तो उस भाषण को समझनेवाला भी अवश्य संस्कृतज्ञ होना चाहिए—

कुनद् हमजिंस बा हमजिंस परवाज़।
कबूतर बा कबूतर काज़ बा काज़॥

अर्थात् एक जातिवाला अपनी ही जातिवाले के साथ उड़ता है, कबूतर कबूतर के साथ और काक काक के साथ।]

बाहर (क्रिया का स्रोत वा आधार) यदि चेतन ही चेतन है, तो भीतर (प्रतिक्रिया का आधार) भी चेतन ही चेतन होना चाहिए।—

न आसमानो न मह आफ़ताबो-जुल्दे-बरीं।
न अंजुमो न मलायक, न कस अयाँ न निहाँ॥ १॥
न दोज़खो न बहिश्तो न मुल्क नै ममलूक।
बले यकेस्त कि दर जुम्ला ज़ाहिर हस्तो-निहाँ॥ २॥
दो कौन ओस्त वले ग़ुल-अजब कमाल अस्त ईं।
न अक़्ल दानिदा-नै वह्म नै ख़िरद न बयाँ॥ ३॥
चगूना अक़्ल बरद पै कमाले-हसरते-ओस्त।
न ज़ाहिरस्तो-न बातिन न आशकारो-निहाँ॥ ४॥

अर्थ न आकाश है, न चंद्रमा है, न सूर्य और न उत्तम स्वर्ग है, न वह तारा है, न फ़रिश्ता, न कोई प्रकट है, न छिपा है॥ १॥

न नरक है न स्वर्ग है, न मुल्क है न प्रजा है; किन्तु वह एक है जो सब में प्रकट और छिपा है॥ २॥

दोनों लोक वही है; किन्तु आश्चर्य और निपुणता यही है कि न उसको बुद्धि जानती है, न समझ और न वाक्-शक्ति ॥ ३ ॥

बुद्धि उसका खोज कैसे लगा सकती है ? (अर्थात् कदापि नहीं लगा सकती), इसलिये उसको इसका अत्यंत शोक है कि वह न बाहर है न भीतर, और न प्रत्यक्ष है न अप्रत्यक्ष ॥ ४ ॥

समीक्षक—अस्तु, इतना तो मान लिया कि भीतर भी चेतन है और बाहर भी चेतन है, किन्तु अद्वैत इससे भी सिद्ध नहीं होता । यद्यपि वास्तव में चेतन ही ऐक्शन का कारण है और चेतन ही रि-ऐक्शन का और इस पारस्परिक संघर्षण से संसार आविर्भूत होता है । किन्तु चेतन फिर भी दो रहते हैं, एक भीतरवाला और दूसरा बाहरवाला ।

राम—चेतन दो नहीं,

जब किसी को ध्रुव-तारा दिखाना होता है, तो उत्तर की ओर उसका मुँह करके कहा करते हैं, वह देख सप्तर्षि (तारों का पुञ्ज जो पाश्चात्य लोगों के यहाँ Bear है) । ये सप्तर्षि पहले दिखा देने से ध्रुव का पता लगना सहज हो जाता है । वैसे 'भीतर चेतन' और 'बाहर चेतन', यह बाह्य द्वैत केवल इसलिये दिखाया गया है कि अद्वैत (ध्रुव) का ठीक-ठीक पता सहज में लग जाय ।

(१) शब्द 'भीतर' और 'बाहर' अंतःकरण (बुद्धि, मन intellect and understanding) के भेद (partition) से बोले गए थे; किंतु अनुभव के प्रकाश से मन (अंतःकरण) की सत्यता देखी जाय, तो यह अन्तर (परदा) ऐसे

असत् है जैसे अँधेरे को दीपक से देखा जाय तो असत् होता है। वास्तव में व्यवधान (Line of demarcration) ही कोई नहीं, तो बाहर और भीतर कैसा। 'बाहर का चेतन' और 'भीतर का चेतन' यह द्वैत किस प्रकार हो सकता है ?

इस विषय को पुराण की एक कथा खूब स्पष्ट करती है। भस्मासुर दैत्य को शिवजी (कारण शरीर के प्रकाशक) नें यह वर (boon) दान दिया कि "जिसपर तू हाथ रक्खेगा, वह भस्म हो जायगा।" यह शक्ति पाते ही भस्मासुर ने अपने उपकारी पर ही शक्ति की परीक्षा करने को विचारा अर्थात् स्वयं शिवजी पर हाथ साफ़ करने की सूझी।

कस नयामोख्त इल्मे-तीर अज़ मन।
कि मरा आक़बत निशाना न करद॥

अर्थ—किसी ऐसे मनुष्य ने मुझसे बाण-विद्या नहीं सीखी कि जिसने मुझको अन्त में लक्ष्य न बनाया हो।

शिवजी आगे-आगे दौड़ने लगा और भस्मासुर हाथ बढ़ाए पीछे-पीछे हो लिया। शिवशंकर भगवान् वह पकड़ा गया! वह जलकर राख हुआ! वह वश में आ गया! वह भस्म हुआ! नहीं नहीं, बच निकला। भस्मासुर किस अपवित्र दृष्टि से शंकर की माया का लालच कर रहा है। क्या सचमुच शिवजी का संहार करेगा ?

आहा! क्या आत्मा को प्रफुल्लित कर देनेवाला स्वर सुनाई दिया! यह प्राणप्रद स्वर किधर से आया ? वह देखो, पवित्रता की मूर्ति, नख-शिख कांतिमान, सुंदरियों की मुकुटमणि "मनमोहिनी" किस हृदय-हारिणी गति से नृत्य कर रही है, [यह "मोहनी-अवतार" भगवान् विष्णु (सतोगुण के प्रकाशक) ने शिवजी की जान बचाने

के लिये धारा है] भस्मासुर (मन-) मोहिनी की मनलुभावनी पवित्रता पर दृष्टि डालते ही अपने आप से बेसुध हो गया। मोहनी ने उस दैत्य के अपवित्र हृदय से द्वैत को ऐसा धो दिया और उसके रोम-रोम में ऐसा आश्चर्यजनक प्रवेश किया कि भस्मासुर मानों मोहनी का छाया-चित्र बन गया। मोहनी नाचते-नाचते हाथ-पाँव को जिस प्रकार हिलाती थी, उसी का अनुकरण भस्मासुर करने लगा। मोहनी ने अपने दोनों हाथों को अर्द्धचक्र बनाते मिलाया, भस्मासुर ने भी ऐसा ही किया। मोहनी ने एक बाहु से सुंदर धनुष बनाया, भस्मासुर ने भी यही किया। धीरे-धीरे मोहनी ने अपना हाथ शिर पर रक्खा, विह्वलता की तरंग में भस्मासुर ने भी अपने शिर पर हाथ रक्खा। ए लो, झट भस्म! छुट्टी।

इस दृष्टांत का दार्ष्टांत यह है। तममय कारण-शरीर (अज्ञान) पर आत्मा रूपी सूर्य की कृपादृष्टि पड़ी, तो जैसे सूर्य के तेज से बर्फ पिघल पड़ती है, वैसे ही शिव (आत्मा) की कृपादृष्टि की बदौलत कारण-शरीर से मन (सूक्ष्म शरीर) रूपी भस्मासुर उत्पन्न हुआ। अब वस्तुतः तो समस्त शिव ही शिव है, आत्मा ही आत्मा है, किंतु मन (भस्मासुर) को आत्मा ही की कृपा से यह शक्ति (सत्ता) प्राप्त है कि जहाँ हाथ डाले, राख बना दे। तुम्हारी आँख के सामने क्या है? आत्मा (शिव)। मन (भस्मासुर) ने वहाँ छाया डाली तो वृक्ष दृष्टिगोचर होने लगा। आत्मा (शिव) क्या भस्म हो गया? नहीं, भाग गया। दाहिनी ओर क्या है? आत्मा (शिव)। मन (भस्मासुर) ने छाया डाली, दीवाल दिखाई देने लगी। आत्मा (शिव) अंतर्द्धान। किंतु आत्मा (शिव) मरा किसी प्रकार से

नहीं; क्योंकि वृक्ष और दीवार के नाम रूप में भी सत्-चित्-आनंद रूप से वह झलक मार रहा है। तुम्हारे शिर की ओर क्या है ? आत्मा (शिव)। मन (भस्मासुर) ने छाया डाली। चंद्रमा दिखाई पड़ने लगा; आत्मा विलीन। बाज़ार विचरण को जाओ। चारों ओर क्या है ? आत्मा ही आत्मा।

किंतु मन-भस्मासुर हाथ फेरता जाता है, मुर्दा मैटर ही मैटर (माया, नामरूप) दिखाई पड़ता है। आत्मा भागा हुआ।

बचपन से लेकर बुढ़ापे तक चाहे स्वप्नावस्था में, चाहे जाग्रतावस्था में जो कुछ देखा सुना या किया कराया केवल आत्मा ही आत्मा है, किंतु मन (भस्मासुर) ने आत्मा न देखा।

संस्कृत-ज्योतिष-शास्त्रवालों के यहाँ एक ही सूर्य भिन्न-भिन्न राशियों में भिन्न-भिन्न नाम पाता है। वैसे ही एक आत्मा जो कारण-शरीर (अज्ञान, सुषुप्ति) पर प्रकाशमान होने के विचार से शिव कहलाता है, जाग्रत् अवस्था पर प्रकाशमान होने के विचार से विष्णु नाम से अभिहित होता है। मन-भस्मासुर का अंत करने के लिये जाग्रतावस्था में सतोगुण की अधिकता के समय यही आत्मा (विष्णु) मोहनी-अवतार से अनहद-ध्वनि सुनाना आरम्भ करता है अर्थात् श्रुति (उपनिषद्) रूपी मोहनी-अवतार मन-भस्मासुर को विह्वल बनाता है, अपने साथ-साथ नाच नचाता है, कई प्रकार के आरम्भिक वाक्यों से बहलाता-बहलाता अन्त में शिर पर हाथ धरता है, अर्थात् "तत्वमसि", "अहं ब्रह्मास्मि"। इस अवसर पर भस्मासुर भी अपने शिर पर हाथ धरता है "अहं ब्रह्मास्मि"।

यह ब्रह्माकार वृत्ति मन-भस्मासुर का नाश करती है और शिव ही शिव, एक शिव ही शिव शेष रह जाता है।

टूटी ग्रन्थि अविद्या नाशी, ठाकुर सत्य राम अविनाशी।
लै मुझमें सब गये रहे बाकी, वासुदेव सोऽहं कर झांकी॥

Then shall I be free
When I shall cease to be.

अर्थ—जब मेरी परिच्छिन्नता दूर होगी तब मैं स्वतंत्र हूँगा।

(२) भीतर और बाहर एक ही चेतन होने का सर्व-साधारण की समझ में आनेवाला प्रमाणः—एक व्यक्ति 'क' की गर्दन पर खुजलाहट हुई, अब उसी व्यक्ति का हाथ तो ठीक उचित स्थान पर आवश्यकता के अनुसार खुजलायगा, अन्य व्यक्ति 'ख' ठीक-ठीक रीति से उचित समय पर कभी नहीं खुजला सकता। निस्संदेह पहले व्यक्ति 'क' के बतलाने और जतलाने से दूसरा मनुष्य 'ख' यदि किसी अंश में लाभान्वित हो सके तो हो सके, पर अपने आप कोई सहायता नहीं कर सकता। किंतु प्रथम व्यक्ति 'क' के समझाने से सहायता पाना तो यही अर्थ रखता है कि वह व्यक्ति 'क' स्वयं अपनी सहायता कर रहा है। दूसरा व्यक्ति 'ख' तो एक प्रकार उस 'क' के औज़ार या हाथ का काम दे रहा है।

अतः जैसे गर्दन (अर्थात् आवश्यकता को अनुभव करनेवाला) और हाथ (अर्थात् आवश्यकता को दूर करनेवाला) इन दोनों का अधिष्ठान चेतन एक ही है (चाहे मनुष्य सोया पड़ा हो, इधर मुँह पर मक्खी बैठती है, उधर हाथ अपने आप उसे उड़ाने के लिये उठ आता है।)

वैसे ही, ऐ प्यारे ! वह सत्ता (चेतन), जो (तेरे) इस एक शरीर के भीतर शासक है, वही सूर्य चन्द्र आदि समस्त सृष्टि की स्वामिनी है। सारी रात तुम निद्रा-भर सो लेते हो, उधर सवेरे के समय तुम्हारे इस शरीर के भीतर ज्योति की खुजली जान पड़ती है, इधर इस खुजली को दूर करने के लिये सूर्य हाथ की भाँति झट आ उपस्थित होता है। मेरे प्रियतम ! शंका और सन्देह मन से मिटा दो। जिस तुम्हारे सच्चे अपने आप का खुजली अनुभव करनेवाला यह शरीर है, उस ही तुम्हारे सच्चे अपने आप का सूर्यरूपी खुजलानेवाला हाथ है।

मसनवी

आँ माहे मुश्तरीश्त चबाज़ार आमदा ।
खुद रा ज़ि दस्ते-ख्वेश ख़रीदार आमदा ॥ १ ॥
महबूब गश्ता अस्त मुहिब्बे-जमाले-ख्वेश ।
मतलूबे-ख्वेश रास्त तलबगार आमदा ॥ २ ॥
ज़द हल्क़ा दोश बर दरे-दिल यारे-मानवी ।
गुफ़्तम कि कीस्त? गुफ़्त कि दर-बाज़ कुन, तुई ॥ ३ ॥
नक़्क़ाश गश्ता नक़्शो-नगार अस्त बेगुमाँ ।
मानी निहाँ शुदा अस्त दरीं नक़्शे-मानवी ॥ ४ ॥

अर्थ—वह प्यारा (प्रेमपात्र) स्वयं बाज़ार में ख़रीदार होकर आया हुआ है और अपने हाथ से अपनी ही ख़रीदारी कर रहा है ॥ १ ॥

अपने ही सौंदर्य का आसक्त वह (प्रेमी ही) स्वयं हो गया है और अपने प्राप्तव्य का स्वयं ही चाहनेवाला बन गया है ॥ २ ॥

मेरे सुहृन्मित्र ने कल रात्रि को हृदय-द्वार पर कुंडी

खटखटाई। मैंने पूछा—कौन है? उसने उत्तर दिया कि पट खोल, तू ही है ॥ ३ ॥

नक़्क़ाश (ईश्वर) ही निस्सन्देह यह चित्र हो गया है और इस चित्र के भीतर में असली चित्रकार स्वयं छिपा हुआ है ॥ ४ ॥

दोश आँ सनम बेगानावश बिगुज़श्त अज़ मन चूँ परी।
कर्दम सलामश लेकिन ओ दादा जवाबे-सरसरी ॥ १ ॥
गुफ़्तम चरा बेगानए? गुफ़्ता कि तू दीवानए।
मन कीस्तम तू कीस्ती, दर ख़ुद चरा मी नंगरी ॥ २ ॥
तू अव्वली ओ आख़िरी, तू बातनी ओ ज़ाहिरी।
तू क़ासिदी ओ मक़सदी, तू नाज़िरी ओ मंज़री ॥ ३ ॥

अर्थ—कल रात को वह प्यारा अन्य की भाँति मेरे पास से परी की तरह निकल गया। मैंने उसको अभिवादन किया, किन्तु उसने सरसरी (साधारण) उत्तर दिया ॥ १ ॥

मैंने कहा तू बेगाना (अन्य) क्यों बन गया? उसने उत्तर दिया तू पागल हो गया है। मैं कौन हूँ, तू कौन है, यह अपने भीतर क्यों नहीं देखता है?

तू ही आदि है तू ही अन्त है, तू ही बाहर है तू ही भीतर है, तू ही उपदेशक है तू ही उपदेश है और तू ही देखनेवाला और दर्शन-योग्य है।

कौए की दोनों आँखों में एक ही मर्दमक होती है। बाईं आँख से देखता है तो नेत्र इधर फेर लेता है, दाहिनी आँख से देखते समय उधर फेर लेता है। तुम ही सूर्य-रूपी दाहिनी आँख में प्रकाशमान हो, तुम ही मनुष्य-रूपी बाईं आँख में आश्चर्य का तमाशा हो। डाइनैमो (dynamo) से जो शक्ति निकलती है, वही वृत्त पूरा करके उसमें लौट

आती है। इधर बालक जन्म लेता है, उधर बालिका जन्म लेती है, पुरुषों और स्त्रियों की संख्या समुदाय रूप से समान रहती है। जिन देशों में शीत अधिक होता है, उन देशों के पशुओं के शरीर गरम लोमसंकुल होते हैं, मानों लिहाफ़ और तोशक साथ ही लेकर उत्पन्न होते हैं।

संसार की प्रत्येक घटना का अपने इर्द-गिर्द के ठीक उपयुक्त होना [The fittest thing in the fittest place—जिसका नाम, चाहे गलत हो चाहे ठीक, डिज़ाइन (design) रक्खा गया है] स्पष्ट सिद्ध करता है कि खुजली और नख-रूपी समस्त सृष्टि में एक ही चेतन है। घटनाओं (phenomena) में वही चेतन विराजमान होता है, जो उनके इर्द गिर्द (circumstances) में। सब एक ही एक का प्रादुर्भाव है। वह जो तेरा सच्चा अपना आप है, वही समस्त सृष्टि का आत्मा है। जो घटना अनुपयुक्त जान पड़ती है, जो बात अनुचित समझ में आती है, जो काम अशोभित प्रतीत होता है, वह केवल विज्ञान-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण से है, घटनाओं की तह से अनजान होने के कारण से है, जानकारी की कमी के कारण से है। अन्यथा ऐ प्यारो! प्रत्येक घटना, प्रत्येक काम, प्रत्येक बात, प्रत्येक पत्ता, प्रत्येक तारा सातों स्वर मिला हुआ गीत अलाप-अलापकर सुना रहा है कि सब का स्वरूप मेरा ही है, सब का आत्मा मेरा ही आत्मा है। एक, एक, एक।

There is not the smallest orb which thou behold'st.
But in his motion like an angel sings,
Still quivering to the young eyed cherubin:

(Merchant of Venice.)

अर्थ—छोटे से छोटा मंडल भी, जो तू देखता है, ऐसा नहीं है कि अपनी गति में देवदूत की भाँति न गाता हो और अभी तक एक प्रकाशमान नेत्रवाले देवदूत की तरह न थरथराता हो।

ऐ मेरे प्राण! यह एक छोटा सा शरीर है। इसको तू कहता है "मेरा है"। यदि तुझे इसके अंगों और नाड़ी-नसों का पूरा-पूरा तत्त्व ज्ञात हो तो भी तेरा है; और यदि तूने कालिज में इतनी शिक्षा नहीं पाई कि जिससे रगों पट्ठों आदि की समस्त गति और स्थिरता का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो, तो इस अज्ञानता के होते हुए भी शरीर तेरा है। इसमें तुझे कुछ संशय नहीं। वैसे ही समस्त संसार, चाहे तुझे इसके प्रत्येक कुंज और क़सरों का पता हो, तेरा है, और चाहे तुझे एक गाँव की भी पूरी-पूरी जानकारी न हो, तिस पर भी तेरा है। तेरे राजराजेश्वर होने में कुछ भी संशय नहीं।

नेस्त ग़ैर अज़ हस्तिए तो दर जहाँ मौजूद हेच।
ख़्वाह दर इनकार कोशो ख़्वाह दर इक़रार बाश॥

अर्थ—तेरे अस्तित्व के सिवाय संसार में कुछ भी विद्यमान नहीं है, चाहे तू इस बात को अंगीकार कर, चाहे न कर।

यदि तुझे अपना प्रकाशस्वरूप दिखाई नहीं देता, तो भी तेरा है और यदि आरसी में दिखाई देता भी तेरा है। यदि स्वप्न में रुचिकर और चित्ताकर्षक घटनायें उपस्थित हैं, तो तेरे विचार हैं और यदि महाभयावने रूप विद्यमान हैं, तो तेरी करतूत हैं। वैसे ही संसार में चाहे मनभावती घटनाएँ हों, चाहे विपत्तियाँ और आफ़तें हों, सब तेरी ही बनाई हुई हैं—

Joy! Joy! I triumph now ; no more I know
Myself as simply me I burn with love.
The centre is within me ; and its wonder
Lies as a circle everywhere about me.
Joy! Joy! no mortal thought can fathom me.
I am the merchant and the pearl at once.
Lo! time and space lie crouching at my feet
Joy! Joy! when I would revel in a rapture,
I plung into myself and all things know.

अर्थ—आनंद ! आनंद !! मैंने अब विजय पाई है, अब मैं अपने आप को केवल एक परिच्छिन्न व्यक्ति (अहंकार) नहीं समझता । मेरे भीतर अब प्रेम की ज्वाला भड़क उठी है, विश्व केंद्र मेरे भीतर है और उसका विचित्र खेल वृत्त के समान सर्वत्र मेरे चहुँओर वर्तमान है । आनंद ! आनंद ! ! अब कोई मरणशील (मानवी) विचार मेरी तह को नहीं पहुँच सकता, मैं जौहरी और जवाहर दोनों एक साथ ही हूँ । देखो, देश-काल मेरे चरणों पर गिर रहे हैं । आनंद ! आनंद !! अब जब मैं समाधिस्थ दशा में मग्न होना चाहता हूँ, तो झट अपने भीतर ग़ोता लगाता हूँ, अर्थात् अपनी वृत्ति को अपने भीतर लय कर देता हूँ और प्रत्येक वस्तु को जान लेता हूँ (अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता हूँ) ।

गुफ़्तमश ख़्वाहम कि बीनम मर तुरा ऐ नाज़नीं ।
गुफ़्त गर ख़्वाही मरा बीनी, बरो ख़ुद रा ब बीं ॥
गुफ़्तमश बा तो निशस्तन आरज़ू दारम बसे ।
गुफ़्त गर बाशद तुरा ईं आरज़ू बा ख़ुद नशीं ॥

गुफ़्तमश काँ नक़्शगोई बर मिसाले-नक़्शे-तो।
गुफ़्त ज़ाहिर शुद ब नक़्शे-ख़्वेश्तन नक़्श आफ़रीं॥
गुफ़्तमश गोई कि आदम जमए कुल्ले आलम अस्त।
गुफ़्त जमए आलम अस्त ओ जमए रब्बुल आलमीन॥
गुफ़्तमश हम मन तो अम, हम जुमला तो, ख़ंदीदो गुफ़्त।
बर तो ओ बर दीदनत बादा हज़ारां आफ़रीं॥

अर्थ—मैंने उस (यार) को कहा कि मैं ऐ प्यारे! तुझको देखना चाहता हूँ। उसने उत्तर दिया कि यदि तू मेरे देखने की कामना रखता है, तो जा अपने आपको देख (जो तेरा वास्तविक स्वरूप है, वही मैं हूँ)॥ १॥

मैंने उसको कहा कि ऐ प्यारे! मैं तेरे पास बैठने की बहुत इच्छा रखता हूँ। उसने कहा, यदि तुझे यह इच्छा है तो तू जा अपने साथ बैठ (मैं वही ही हूँ)॥ २॥

मैंने उसको कहा कि ऐ प्यारे! तू ऐसा रूप बता जो तेरे रूप के सदृश हो। उसने उत्तर दिया कि मेरे अपने चित्र (रूप) से असली चित्रकार स्वतः प्रकट हुआ है॥ ३॥

मैंने उसको कहा कि क्या तू यह कहता है कि मनुष्य सारे संसार का समास है? उसने उत्तर दिया कि संसार का समास तो क्या, वरन् संसारों के स्वामी (सब लोगों के स्वामी ईश्वर परमात्मा) का भी समास है (अर्थात् ईश्वर के स्वरूप और गुणों का भंडार भी मनुष्य ही है)॥४॥

मैंने उसको कहा कि फिर मैं ही तू हूँ और सब कुछ भी तू है। तिसपर वह हँसा और बोला कि तुझ पर और तेरे ऐसे देखने पर हज़ार-हज़ार बेर बलिहार।

यदि यह शरीर सुंदर है तो उसे देख देख तू प्रसन्न होता है, हर्ष से प्रफुल्ल हो जाता है। यदि यह काला है, तो

ऐ कृष्ण ! तू इस काले-साँवले ही को "मेरा" होने के कारण सुंदर निश्चय करता है—

काला हरना जंगल चरना ओह भी छलबल खूब करे ।
काला हस्ती रहे फौजन में, फौजन का शृंगार करे ॥
काला बादर लरजे गरजे, जहाँ पड़े, तहाँ छल्ल करे ।
काला खांडा रहे मियाँ में जहाँ पड़े दो टूक करे ॥
काली ढाल मर्द के कंधे जहाँ लड़े तहाँ ओट करे ।
काला नाग नागों का राजा जिसका काटा तुरत मरे ॥
काला डोल कुएँ के अन्दर जिसका पानी शांत करे ।
काली भैंस बजर का बट्टा, दूध शक्ति बल अधिक करे ॥
काला तवा रसोई भीतर, खाकर रोटी खलक जिए ।
काली कोकिल कूके कूके जिसका शब्द तन मन हरे ॥
काला है तेरे नैनन सुरमा, तू काले का नाम धरे ?
काला है तेरे नैनन तारा, तू काले का नाम धरे ?
काले तेरे बाल साँप से, तू काले का नाम धरे ?

गोरी री तुम गोरम गोरी; बात करे गुरु ज्ञान की चेरी ।
दाँत दामिनी चमक दमक में; नैन बने जानो आम की कैरी ।
इतना गुमान कहा करे राधा, खोल घूँघट मुख देखन दे री ।

जानां—हो लिबासे बशरी में वखुदा नूरे-खुदा ;
सुनते भी हो कुछ ? आरिफ़ तुम्हें क्या कहते हैं ?

हमसे खुल जाओ बवक़्ते भजन भक्ती एक दिन ।
वरना हम छेड़ेंगे रखकर उज्र्-मस्ती एक दिन ॥

माधुरी छवि से परदा दूर करो । हठ अब छोड़ो । बहुत इन्कार अच्छा नहीं । मान जाओ ! समस्त सृष्टि का आत्मा तुम ही हो ! तुम्हीं ने—

मुसद्दस

(ताल बड़हंस)

कहीं कैवाँ सितारा होके अपना नूर चमकाया।
ज़ोहल में जा कहीं चमका, कहीं मर्रीख़ में आया॥
कहीं सूरज हो क्या क्या तेज़ जलवा आप दिखलाया।
कहीं हो चाँद चमका औ कहीं खुद बन गया साया॥
तूही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिंदों की ज़ुबाँ पर है॥१॥
तेरा ही हुक्म है इन्दर जो बरसाता है यह पानी।
हवा अठखेलियाँ करती है तेरे ज़ेर निगरानी॥
तजल्ली आतिशे-सोज़ाँ में तेरी ही है नूरानी।
पड़ा फिरता है मारा-मारा डर से मर्ग-हैवानी॥
तूही बातिन में पिनहाँ है तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिंदों की ज़ुबाँ पर है॥२॥
तूही आँखों में नूरे मरदमक हो आप चमका है।
तूही हो अक़्ल का जौहर सरों में सब के दमका है॥
तेरे ही नूर का जल्वा है क़तरे में जो नम का है।
तू रौनक़ हर चमन की है, तू दिलबर जामे जम का है॥
तुही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू मस्तों की ज़ुबाँ पर है॥३॥
कहीं ताऊसे-ज़र्रीं चाल बनकर रक़्स करता है।
दिखाकर नाच अपना मोरनी पर आप मरता है॥
कहीं हो फ़ाख़्ता कू कू की-सी आवाज़ करता है।
कहीं बुलबुल है खुद है बाग़वाँ फिर उससे डरता है॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिन्दों की ज़ुबाँ पर है॥४॥

कहीं शाही बना शह पर, कहीं शिकरा है मस्ताना।
शिकारी आप बनता है, कहीं है आब और दाना॥
लटक से चाल चलता है कहीं माशूक़े जा नाना।
सनम तू ब्राह्मण नाक़ूस तू, खुद तू है बुतख़ाना॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिन्दों की ज़ुबाँ पर है॥५॥
तूही याक़ूत में रौशन, तू ही पुखराज औ दुर में।
तूही लाले बदख़्शाँ में, तूही है जूद समुंदर में॥
तूही कुहसारो-दरिया में, तूही दीवार में दर में।
तू ही सहरा में आबादी में तेरा नूर नैयर में॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिन्दों की ज़ुबाँ पर है॥६॥

(ब्रजलाल विष्णु)

प्यारे! तुम्हारा क्या अधिकार है अपने आपको एक शरीर की अहंता (ममता) में पड़ा गलाने का! तुम्हें कब उचित है आत्महत्या करना? समस्त देश-काल तुम्हारा ही शरीर है, तुम ही हो। जिधर दृष्टि डालो, तुम्हारी ही शान है। यदि दुनिया बुरी (काली) है, तो तुम हो; यदि भली (गोरी) है, तो तुम हो, सब तुम्हारा ही जलाल है। चाहे कोई तारे गिन सके, चाहे कोई शिर के बाल भी न गिन सके, किन्तु हो सब तुम ही तुम। यह भी तुम और वह भी तुम। चाहे कहीं ऐसी कला का आविष्कार हो जाय, जिससे सूर्य तक पहुँचना सम्भव हो, चाहे आँख के तारे को भी देखना नसीब न हो सके; किन्तु हो सब तुम ही तुम, यह भी तुम और वह भी तुम। चाहे तुमको प्रत्येक पत्ते और पुष्प की बनावट से पूरी-पूरी

जानकारी हो जाय, चाहे तुमको सुमन-शरीरी मनुष्य का भी पता न लगे, किन्तु हो सब तुम ही तुम।

कोई-कोई मन (heart) को इन्द्रियों का राजा बताते हैं और कोई मस्तिष्क को सम्राट् का नाम देते हैं। कोई आकाश को घूमता मानते थे, कोई भूमि को घूमता सिद्ध कर बैठे; किंतु चाहे यों हो चाहे वों हो, बुद्धि इधर चक्कर खाती हुई जाय, चाहे उधर घबराती हुई फिरे; (बचपन और सुषुप्ति में) कुछ विवेक और समझ न हो या (जाग्रत् में) भूमि और आकाश के कुलावे मिलाए जायँ, तुम्हारे पवित्र स्वरूप सदा एकरस, क्यों कब के प्रश्न से मुक्त, अविनाशी, निर्विकार, त्रिगुणातीत हैं।

Spirit, Infinite, Eternal, Unchangeable in its Being, Wisdom, Power, Holiness, Justice Goodness and Truth.

अर्थात्—आत्मा अपने स्वरूप में अपरिच्छिन्न, अनादि, अपरिवर्तनशील, ज्ञानस्वरूप, शक्तिस्वरूप, पवित्रस्वरूप, न्यायस्वरूप कल्याणस्वरूप और सत्यस्वरूप है।

ख्वाह फिरता है फ़लक और ख्वाह फिरती है ज़मीं;
दख़्ल मेरी ज़ात में हरगिज़ तग़य्युर को नहीं।

यदि विज्ञान में कोई नई बात मिली है तो वह तेरे ही प्रकाशस्वरूप के किसी तिल (ख़ाल) का पता लगा है, तेरी ही कान्ति स्पष्ट हुई है, तेरा ही सौंदर्य प्रकट (विद्यमान) हुआ है।

तत्त्ववेत्तागण भूत-काल में एक दूसरे से बाज़ी बाँध-बाँधकर अद्वैत सिद्धान्त को सिद्ध करते रहे और भविष्य-काल में तत्त्ववेत्ता लोग अद्वैत को सिद्ध करते-करते पागल हो जायँगे। तत्त्वज्ञान के सहस्रों परिवर्तन हो चुके और लाखों आयँगे। रीतियों के सैकड़ों कानून दब चुके और

भविष्य में बीसियों अपने-अपने अवसर पर हरे-भरे होकर आप छिन पत्थर के कोयलों की कानें बन जायँगे। असंख्य साम्राज्य धरती-तल पर हो गए और करोड़ों अपने-अपने समय पर बहार दिखाकर फिर तबाह हो जायँगे। पीछे बुद्धि के तोते उड़ते आए और आगे को होश उड़ते रहेंगे। चाहे तत्त्वज्ञान इसको सिद्ध करने में सफलीभूत हो सके, चाहे बेहोश होकर गिर पड़े, किंतु एकमात्र सत्यात्मा, अपरिवर्तनशील, ज्ञानस्वरूप, आनंदस्वरूप मेरा पवित्र-स्वरूप ज्यों का त्यों चला आया है और रहेगा—

मुद्दते शुद कि मी रसद अज़ ग़ैब।
लहज़ा लहज़ा बगोशे होश ख़िताब॥
कि जुज़ो-नेस्त दर सराय वजूद।
बहक़ीक़त कसे दिगर मौजूद॥

अर्थ—बहुत समय हुआ कि अंतरिक्ष से प्रतिक्षण अंतःकरण में यह ध्वनि सुनाई देती रहती है कि उसके सिवाय इस अस्तित्व की सराय में वस्तुतः और कोई उपस्थित नहीं है।

सीन समा सब से सिर मारू कोई न रहसी आकी जे।
उदय अस्त लौं राज जिन्हाँ दा, सो भी रलसन खाकी जे॥
काल-कला ते बचत न कोई ब्रह्मा विष्णु पिनाकी जे।
इक आनँदराशी अज अविनाशी हम रह जाना बाकी जे॥

'अलहक़ वजूदु मुत्लक़ु व मा सिवाहु खियालुमुज़ख़ज़फ़ु बातिलु'

अर्थ—ईश्वर एक सत्यस्वरूप है, इसके अतिरिक्त विचार करना केवल परिहास और मिथ्या है।

यदि देखने में अत्यन्त निकृष्ट (भोंडा), तीक्ष्ण-स्वभाव, काला भौंराला व्यक्ति है, तो वह तुम्हारा ही अपना आप है। इस तथ्य से तुम मुक्त नहीं।

अतः घृणा कैसी ? और यदि कोई सुन्दर स्वरूप, शुक्र-समान सृष्टि की शोभा और अति विलास-भरी अप्सरावत् है, तो तुम्हारा ही अपना आप है। वह स्वयं तुम्हीं हो तुम्हीं हो, फिर आसक्ति (प्रणय) किससे ? मोह क्यों ? तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियाँ जो उसे अलग दिखाती हैं, सरासर झूठ बोलनेवाली हैं। इनका विश्वास मत करो। तुम सब शरीरों की जान हो। सब तुम हो, सब तुम हो।

Space and Time! now I see it is true, what I guessed at
What I guessed when I loaf'd on the grass,
What I guessed while I lay alone in my bed,
And again as I walk'd the beach under the paling stars
of the morning.

... ...

Where the panther walks to and fro on a limb overhead,
where the buck turns furiously on the hunter,
Where the rattle-snake suns his flabby length on a rock,
where the otter is feeding on fish,
Over the growing sugar, over the yellow-flowered cotton
plant, over the rice in its low moist field

... ...

Scaling mountains, putting myself cautiously up,
holding on by low scragged limbs,
Where the quail is whistling betwixt the woods and the
wheat-lot.
Where the brook puts out the roots of the old tree and
flows to the meadow,
Under Niagra, the cataract falling like a veil over my
countenance,
At the festivals, with black gaurd gibes, ironical license,
bull dances, drinking, laughter,

At apple-peelings wanting kisses for all the red fruits I find,

... ...

Where the burial coaches enter the arched gates of a cemetary

Where the splash of swimmers and divers cools the warm noon,

Throught the gymnasium, through the curtain'd
Saloon, through the office or public hall;

Pleas'd with the native, and pleas'd with the foreign, pleas'd with the new and old,

... ... — ... ...

Wandering the same afternoon, with my face turn'd
up to the clouds, or down a lane or along the beach,

My right and left arms round the sides of two friends and I in the middle.

By the cot in the hospital reaching lemonade to a feverish patient.

... ...

Speading amid the seven satellites and the broad ring, and the diameter of eighty thousand miles,

Speeding with toil'd meteors, throwingfire balls like the rest,

Carrying the crescent child that carries its own full mother in its belly.

Storming, enjoying, planning, loving, cautioning,
Backing and filling, appearing and disappearing,
I tread day and nights such roads.
I fly those flights of a fluid and swallowing soul,
My course runs below the soundings of plummets

(Whalt Whitman)

अर्थ—ऐ देश-काल ! जो कुछ मैंने कल्पना किया था, उसे अब मैं सच निकाला देखता हूँ—अर्थात् जो अनुमान कि घास पर फिरते हुए या अकेले अपने बिस्तरे पर लेटे

हुए या प्रातःकाल ओझल होते हुए तारों के नीचे, तट पर वायु, सेवन करते हुए मैंने (अपने मन में) किये थे, वह सब के सब सच निकले।

... ...

जहाँ कि चीता अपने शिर के बल इधर-उधर वायु-सेवन करता है, जहाँ बारासिंगा तुंदी से शिकारी पर उलटा आक्रमण करता है, जहाँ फुंकारें मारनेवाला साँप एक चट्टान पर धूप में लेटता है, जहाँ ऊदबिलाव मछलियों को गड़प कर रहा है, उगते हुए गन्ने पर, पीले फूलवाले कपास के पौदे पर, ढालू और गीले धान के खेतों में

... ...

पहाड़ों पर यत्न से अपने छोटे दुबले बाहुओं से पकड़-पकड़-कर चढ़ते हुए जहाँ बटेर जंगलों और खेतों के बीच में सीटी बजाता है, जहाँ सोता (नाला) पुराने वृक्ष की जड़ों को उखाड़ता है और चरागाह की ओर बहता है, जहाँ 'नयाग्रा' के तले झरना इस प्रकार गिरता है जैसे मेरे मुखमंडल पर परदा; उन मेलों में जहाँ बदमाश ताने मारते हैं, जहाँ फबतियाँ और व्यंग्य एवं कूट वाक्य खुले तौर पर उड़ते हैं, जहाँ साँड़ों का नाच होता है; मदिरा का खूब पान होता है, हँसी-ठठोली होती है; सेब छीलते हुए लोग उन सब लाल फलों का चुंबन चाहते हैं जो मुझे मिलते हैं।

... ...

जहाँ एक समाधिस्थान के महराबदार दरवाज़े में शव-वाली गाड़ियाँ प्रविष्ट होती हैं, जहाँ तैराकों और गोता-खोरों के नहाने की छींटों से दोपहर ठंडी हो जाती है, जमनास्टिक या व्यायाम के स्थान में से, पर्देदार चौड़े कमरे में से, दफ्तर या पब्लिक-हाल में से, देशी और परदेशी नए

और पुराने दोनों से प्रसन्न होते हुए

... ...

उसी तीसरे प्रहर को बादलों की ओर ऊपर मुह करते, कभी कूचे के नीचे (दक्षिण की ओर) और कभी समुद्र के किनारे किनारे आवारा फिरते हुए, मेरे दहिने और बाएँ बाहु दो मित्रों की जंघाओं के चहुँओर (अर्थात् मित्रों को अपने पार्श्व में लिए हुए) और मैं उनके बीच में होकर; हस्पताल में ज्वर-पीड़ित रोगी की चारपाई के निकट लेमोनेड पहुँचाते हुए

... ...

सातों नक्षत्रों, चौड़े वृत्त में से और अस्सी हज़ार मीलों के व्यास में से तेज़ गमन करते हुए, पुच्छल तारों के साथ जो अवशिष्ट तारों की भाँति आग के गोले फेंकते हैं, तेज़ जाते हुए, उस नए चाँद जैसे बच्चे को ले जाते हुए जो अपनी माता को पूरा-पूरा अपने साथ पेट में लिए हुए होता है, गुल-शोर मचाते हुए, आनंद मनाते हुए, तजवीज़ें करते हुए, ेम करते हुए, बचाव करते हुए, आश्रय देते हुए, पूर्ण पूर करते हुए, प्रकट और परोक्ष होते हुए, मैं रात दिन ऐसे रास्तों में चलता हू (या ऐसे मार्ग ते करता हूँ)। मैं एक द्रव और दबी हुई आत्मा की उड़ान उड़ता हूँ (अर्थात् जैसे एक द्रव तत्काल गरमी से उड़ जाता है और उड़ता दिखाई नहीं देता, जैसे एक दबी हुई आत्मा शरीर से मृत्यु समय उड़ जाती है, मगर उड़ती दिखाई नहीं देती, ऐसे ही मैं भी उड़ता फिरता हूँ)। मेरा मार्ग पलमट (भूमि का आकर्षण जाँचने का यंत्र) की आवाज़ों से भी नीचे जाता है (अर्थात् मेरा चलने का मार्ग इतना दूर और गहरा है कि कोई थाह ही नहीं लगा सकता और न कोई यंत्र बता सकता है)। (व्हाल्ट व्हिटमैन)

तजल्ली हास्त हक़ रा दर नक़ाबे-ज़ाते-इन्सानी।
शहूदे-ग़ैब गर ख़्वाही व ख़ूब ईं जास्त इमकानी ॥ १ ॥
हिजाबे-जलवा हम यकसर हजूमे-जलवा हस्त ईं जा।
नक़ाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी ॥ २ ॥
कमाले-ख़ुद शिनासी शुद दलीले-क़ुदरते आरिफ़।
तू गर ईं रम्ज़ बशनासी तू नीज़ ऐ बेख़बर आनी ॥ ३ ॥
चमन रा शोख़ी अज़ नाज़त फ़लक हा पर्दए-साज़त।
दो आलम महू अंदाज़त ब फ़हम ऐ क़तरा नादानी ॥ ४ ॥

अर्थ—मानुषी स्वरूप के पर्दे में ईश्वरीय तेज निहित है। यदि तू उस अव्यक्त की साक्षी चाहता है (अर्थात् यदि तू उस छिपे हुए स्वरूप का अनुभव करना चाहता है) तो यहाँ ही उसका अनुभव होना संभव है।

यहाँ तेज का समूह (पुंज) ही तेज-स्वरूप का पर्दा बना हुआ है (अर्थात् प्रकाश की अधिकता ने ही प्रकाश के स्रोत को छिपा रक्खा है)। जैसे नदी को कोई पर्दा छिपाए हुए नहीं है, सिवाय नंगेपन के तूफ़ान के ॥ २ ॥

ज्ञानी की तर्क-शक्ति उसके स्वरूप-ज्ञान (उसके नंगा होने) का कमाल है। तू यदि इस भेद को जान ले, तो ऐ भूले हुए! तू भी वही हो जाय ॥ ३ ॥

बाग़ की शोख़ी तेरे ही नाज़ (हाव-भाव) के कारण है और आकाश तेरे ही बाजे के पर्दे हैं, ऐ ना समझी के बिंदु (ऐ भोले पुरुष)! तू समझ कि दोनों लोक तेरे ही नख़रे पर लट्टू हो गए हैं (या मिट गए हैं)।

प्रश्न—सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

अर्थ—हरचे आयद दर नज़र अज़ ख़ैरो-शर;
जुमला ज़ाते-हक़ बुवद ऐ बेख़बर।

अर्थात् ऐ बेख़बर, जो कुछ भलाई और बुराई दृष्टिगोचर होती है वह सब ईश्वर का स्वरूप है।—

"वन तृण पर्वत है परब्रह्म"

एक ही चेतन प्रत्येक वस्तु में, बिना ह्रास और वृद्धि के, ज्यों का त्यों विद्यमान है।

ब नामे आँ कि ओ नामे नदारद।
बहर नामे कि ख़्वानी सर बरआरद॥

अर्थ—यद्यपि वह कोई नाम नहीं रखता, फिर भी जिस नाम से तू उसको बुलाए तो वह शिर निकालता है (प्रकट हो जाता है)।

इनकी, संक्षेप में, तनिक व्याख्या कर दो।

उत्तर—पहले यह स्वल्प रूप से वर्णित हो चुका है कि—

तदंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः। (ईशा० उप०) अर्थात् एक ही चेतन (आत्मा) सब के भीतर है और वही चेतन सब के बाहर है। और यह चेतन मेरा वास्तविक अपना आप है। जैसे स्वप्न में एक ही पुरुष उधर पदार्थ (object) बन जाता है और इधर देखनेवाला (subject) बन जाता है, वैसे ही जाग्रत् में भी यही चेतन उधर ऐक्शन (क्रिया) बनकर आता है और इधर रि-ऐक्शन (प्रति-क्रिया) बनता है। यही चेतन ऐक्शन और रि-ऐक्शन के द्वारा विविध प्रकार के नाम-रूपों में दृश्यमान होता है। इस एक ही चेतन के बाहरी में द्वैतपन पर संसार का दृश्य निर्भर है। एक हाथ इधर से आया, एक उधर से आया; ताली बजी; किंतु दोनों हाथ एक ही पुरुष के थे। वैसे दोनों ओर चेतन एक ही है।

गंगा की एक लहर इधर से आई, दूसरी उधर से आई। दोनों के टकराने से फेन और बुलबुले आदि उत्पन्न हो गए। किंतु दोनों लहरें एक ही गंगा की हैं। वैसे ही संसार-रूपी फेन बुलबुले दिखाई देने में ऐक्शन (क्रिया) और रि-ऐक्शन (प्रति-क्रिया) रूपी लहरों का स्रोत एक ही चेतन है।

माया

संध्या

गंगा की ठंडी छाती से आती है खुश हवा।
है भीने-भीने बाग़ का साँस इसमें मिल रहा॥
गंगा के राम-रोम में रचने लगा वह बह्र।
आया जुवार ज़ोर का लहरों पे लेके लह्र॥
देखो तो कैसे शौक़ से आते जहाज़ हैं।
मारे खुशी के सीटी बजाते जहाज़ हैं॥
शादी ज़मी की प लो! फ़लक से हुई-हुई।
यह सायबाँ क़नात है जय ही तनी हुई॥
दुल्हा के सिर पे तारों का सेहरा खिला-खिला।
दुल्हिन के वक़्ते-दिल ने चिराग़ाँ खिला दिया॥

[स्थान—ईडन गार्डन, कलकत्ता]

है क्या सुहाना बाग़ में मैदाने-दिलकुशा।
और हाशिया है बैंचों का सब्ज़ा पे वाह वाँ॥
मजमा हुजूम लोगों का भरकर लगा है यह।
मैदान आदमी से लबालब भरा है यह॥
बैंचों पे बाज़ बैठे हैं, अक्सर हैं खुश खड़े।
बाँके जवान बाग़ में हैं टहलते पड़े॥

मैदाँ के पार सड़क पे है बग्गियों की भीड़ ।
घोड़ों की सरकशी है लगामों को दे न पीड़ ॥
शौक़ीन कलकता के हैं मौजूद सब यहाँ ।
हर रंग ढंग वज़ा के मिलते हैं अब यहाँ ॥

काम

हम सब को देखते हैं, यह देखते कहाँ ?
आँखें तनी हुई हैं, यह क्या पीर क्या जवाँ ॥
मर्कज़ है सब निगाहों का उजला चबूतरा ।
ख़ुश बैंड बाजा गोरों का जिसमें है बज रहा ॥
गाते फुला-फुला के हैं वह गालें गोरयाँ ।
क्या रोशनी में सुर्ख़ दमकती हैं कुर्तियाँ ॥
ऐ लोगो ! तुमको क्या है जो हिलते ज़रा नहीं ।
क्या तुमने लाल कुर्तों को देखा कभी नहीं ?

पर्दा

इसरार इसमें क्या है, करो गौर तो सही ।
इस टिकटिकी में क्या है, करो गौर तो सही ॥
गोरों की कुर्तियों को हैं गो तक रहे ज़रूर ।
लेकिन नज़र से कुर्तियाँ गोरे तो सब हैं दूर ॥
लहरा रहा है पर्दा-सा सब को निगाह पर ।
इस पर्दा से पिरोई है हर एक की नज़र ॥
यह पर्दा तन रहा है अजब ठाठ-बाट का ।
जिसमें ज़िमीं ज़माँ-ओ-मकाँ है समा रहा ॥
पर्दा है बिला छेद कि सीवन कहीं नहीं ।
लेकिन मुटाई पूछो तो असला नहीं नहीं ॥
पर्दा सितम है सहर के नक़्शो-नगार हैं ।
हर आँख के लिये याँ अलहदा ही कार हैं ॥

सब सामई के सामने पर्दा है यह पड़ा।
हर एक की निगाह में नक़्शा बना दिया॥
पर्दों से राम के है यह पर्दा अजब पड़ा।
गंधर्व-नगर का है कि मेराज का मज़ा॥
जादू है, हिप्नोटिज्म है, पर्दा सुराब है।
क्या सच है, रंग-ढंग ये सब नक़्शे-आब है?
रमिए तो यार पर्दा में, देखें तो कैफ़ियत।
आँखें सिली हैं पर्दे से क्यों? क्या है माहियत?
दीदों में और रंगों में क्या है मुनासिबत?
* * * * * * *
लाठी है हुबाब-दहर, पानी बन जाओ।
मौजों की तरह लड़ो, मगर एक ही रहो॥
साथ है सूरज के सूरत आफ़रीं।
नक़्श पर नक़्क़ाश शैदा हो गया॥

प्राकृतिक प्रमाण—मैं साक्षी चेतन हूँ, यह सिद्धांत है जिसका खंडन नहीं हो सकता किंतु अपने आपको केवल साक्षी मात्र, निःसंबंध, नपुंसक ठहराना संतोष नहीं लाता—निर्जन एकांत की भाँति अप्रिय प्रतीत होता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारी प्रकृति इस बात की रवादार नहीं कि अपने आपको केवल ऐक्शन (क्रिया) या केवल रि-ऐक्शन (प्रति-क्रिया) का स्रोत मानने पर इतिश्री की जाय। जब तक अनुभव स्वरूप के साथ एकता न होगी, चित्त को चैन नहीं पड़ने की। अब ज़रा और विचार कीजिए।

गुलाब का फूल सामने रक्खा है,
इसकी रंगत इसका एक गुण है;

यह गुण देखनेवाले (subject) की ओर से रि-ऐक्शन (प्रति-क्रिया) का परिणाम है। जैसे आरसी में पान खाई हुई प्रिया के ओंठ प्रिया के आरसी देखने का परिणाम है।

फूल की गंध उसका एक गुण है। यह भी देखनेवाले (subject) की ओर से रि-ऐक्शन का परिणाम है।

फूल की कोमलता भी एक गुण है, जो देखनेवाले के रि-ऐक्शन का परिणाम है। फूल का रूप भी एक गुण है, जो देखनेवाले के रि-ऐक्शन का परिणाम है। निदान फूल के समस्त गुण (नाम-रूप) देखनेवाले की ओर से रि-ऐक्शन (प्रति-क्रिया) होने के पश्चात् प्रतीत होते हैं। अब खूब सोच-विचारकर बताइए कि "फूल केवल इन गुणों के समुच्चय को ही कहते हैं, अथवा फूल में कुछ और भी तत्त्व है ?"

प्रत्यक्ष में तो यही ज्ञात होता है कि यदि फूल की रंगत, गंध, आकार, कोमलता, स्वाद, परिमाण इत्यादि (नाम-रूप) गुणों का खयाल मन से दूर कर दिया जाय, तो कुछ भी शेष न रहेगा ; शून्य ही हाथ आएगा। आरंभ में तो यही अनुमान घेर लेता है कि पुष्प केवल गुणों के पुंज का ही नाम है; किंतु वेदांत यह कहता है कि प्यारे ! फूल के समस्त गुण तो निस्संदेह तुमने एक प्रकार अपने भीतर से उगले हैं, और फूल, फूल की दृष्टि से, तेरे रि-ऐक्शन (प्रति-क्रिया) के दिए हुए गुणों का ऋणी है। किंतु जिसको तू फूल मान रहा है, उसने फूल की दृष्टि से प्रतीत होने से पहले तेरी नासिका पर प्रभाव डाला, तेरी आँख पर काम किया, तेरी घ्राणेंद्रिय पर ऐक्शन किया, तेरी रसना-इंद्रिय पर प्रभाव डालने की योग्यता

दिल में । बुरे स्वभाववाले पुरुष में भी, जो शोक करता रहता है, वैसी ही पूर्ण और भरपूर है जैसे कि एक मग्न (आनंदित) देवदूत में जो प्रार्थना और उपासना करता रहता और (प्रेम में) जलता रहता है। उस (पूर्ण सत्ता) की दृष्टि में न कोई उत्तम है न अधम; न बड़ा है न छोटा। वह सब को पूर्ण करती है, सीमाबद्ध करती (या स्वयं उछलती और भड़कती है), सब को मिलाती (जोड़ती) है और सब को एक समान करती है। (अलक्जेन्डर पोप)

उक्त तथ्य को हम इस प्रकार निरूपण करेंगे—

फूल = गुण (= फूल) + अ

[गुण (= फूल) भेद से तात्पर्य है वह गुण जिनकी बदौलत 'फूल' नाम दिया जाता है और अ से प्रयोजन है चेतन, जो गुणों से परे है।]

यह आम का फल दृष्टिगोचर हो रहा है। यह गुलाब के फूल से क्यों भिन्न है?

अपने गुणों के कारण। फल के गुण और हैं और फूल के और। फूल सूँघने की वस्तु है, फल खाने या चूसने की। रंगत में, आकृति में, नाम में, सूक्ष्मता या स्थूलता में, प्रभावों में और प्रयोग में पृथकता है। इसलिये फल और फूल दोनों एक ही नहीं कहला सकते। संक्षेप से यह कि भिन्नता (पृथकता differentiation) का कारण गुण (नाम-रूपादि) हैं जो कि अनुभव करनेवाले की ओर से रि-ऐक्शन का परिणाम हैं। क्या फूल की वास्तविक सत्ता चेतन, ऐक्शन का कारण (जो फूल के गुणों से परे है), फल की वास्तविक सत्ता चेतन ऐक्शन के कारण से (जो फूल के गुणों से पृथक् है) भिन्नता नहीं रखती?

वेदांत का यह उत्तर है कि फूल के वास्तविक स्वरूप और फल के वास्तविक स्वरूप में कोई अंतर नहीं है। जैसे अँगूठी और कंगन में भिन्नता केवल गुणों के कारण से है, अपने असली स्वरूप (सोने) में कुछ भी भेद नहीं है। अँगूठी अँगुली में पहनी जायगी, कंगन कलाई में पहना जायगा। दोनों को आकृतियाँ और बनावट आदि पृथक्-पृथक् हैं, किंतु हैं दोनों सोना एक ही। वैसे एक ही चेतन आत्मा (अ) गुलाब की असली सत्ता है और आम की भी वास्तविक सत्ता है। अतः वेदांत के मत से आम का समीकरण (Equation) उक्त निरूपणानुसार इस प्रकार होगा—

आम का फल = गुण (= फल) + अ

[गुण (=फल) से तात्पर्य है वे गुण, जैसे मिठास, पीली रंगत आदि, जो इस फल को संसार की समस्त अन्य वस्तुओं से न्यारा कराते हैं। यह भी स्मरण रहे कि समस्त गुण अनुभवकर्ता के रि-ऐक्शन का परिणाम ही होते हैं।]

यदि आम के फल की वास्तविक सत्ता (अ) को गुलाब के फूल की वास्तविक सत्ता से अभेद मानने में आपत्ति हो, तो लीजिए इसे अ से निरूपण नहीं करेंगे, अ से इसका निरालापन जतलायेंगे। इस रूप में आम का समीकरण (Equation) निम्नानुसार होगा—

आम का फल = गुण (= फल) + अ[1]

इसी प्रकार मिसरी को मिसरी ठहरानेवाले आरोपित गुणों (गुण = म) से परे जो मिसरी का स्वरूप है, उसे फूल और फल के स्वरूप से पृथक् अ[2] मानने पर मिसरी का समीकरण निम्नानुसार होगा—

मिसरी = गुण (= म) + अ[२] *

---

* नोट—गुणों के आरोपित होने के विषय में कुछ अक्षर और लिख देना उचित है। मिसरी का (सब से बड़ा गुण) मीठापन खानेवाले की अवस्था पर निर्भर है। अतएव कुछ अवस्थाओं में मिसरी कड़वी लगती है। वह दर्पण जो मनुष्य के लिये स्वच्छ निर्मल है, च्यूँटी की आँख को गर्दा ही गर्दा दिखाई देता है। जहाँ मनुष्य के लिये पता लगाना असंभव होता है, गंधवाला कुत्ता झट शिकार को सूँघ लेता है। च्यूँटियाँ आने-वाली वर्षा को जान जाती हैं, अंडे मुँह में लिए दौड़ती दिखाई देती हैं। किसी वस्तु की मोटाई और लम्बाई-चौड़ाई जिसे मनुष्य कुछ विचार करता है, हाथी की आँख उसे कुछ और ही ठानती है। मेंढक की आँख यह गवाही देती है कि पानी में तो सब वस्तुएँ साफ़-साफ़ होती हैं पर पानी के बाहर सब पर धुँधलापन छा रहा है। जो वस्तुएँ साधारण मनुष्यों को सफ़ेद-सफ़ेद दिखाई देती हैं, कुछ अवस्थाओं में कुछ लोगों को पीली-पीली दिखाई देती हैं। माता-पिता को किवाड़े दीवार चारपाई ज्ञात होती है, किंतु नन्हा बच्चा कुछ भी अनुभव नहीं करता, चाहे उसकी आँखें खुली हों और जाग रहा हो। आँखों की बनावट यदि सूक्ष्मदर्शक, दूरदर्शक केलाइडस्कोप (Kaleidoscope) या Look & Lough ("देखो और हँसो" खिलौना) के नियम पर हो, तो संसार बिलकुल और का और हो जाय। कानों की बनावट में तनिक-सा परिवर्तन सुनने का चित्र ही पलट दे। जहाँ कीड़े से बढ़ते-बढ़ते मनुष्य तक विकास हुआ है, तो क्या मालूम भविष्य में कोई ऐसा और विकास का चक्र आ जाय कि मनुष्यों के इंद्रिय और मस्तिष्क उलट-पलटकर नए रंग-ढंग अनुभव करने लगें। इन उदाहरणों (दृष्टांतों) से स्पष्ट होता है कि वस्तुओं के गुण वास्तिक नहीं होते, बरन् अनुभव करनेवाले पर अवलंबित होते हैं और उनकी प्रतीति सदा अनुभव करनेवाले के आश्रय है।

विभिन्न पदार्थों में वास्तविक स्वरूप को विभिन्न मानने पर प्रत्येक पदार्थ के लिये एक नया समीकरण होगा—

भौंरा = गुण (= भ) + $अ^{३}$

सिंह = गुण (= स) + $अ^{४}$

गंगा = गुण (= ग) + $अ^{५}$

हिमालय = गुण (= ह) + $अ^{६}$

लेखनी = गुण (= ल) + $अ^{७}$

... ...

इस हिसाब से $अ^{१}$, $अ^{२}$, $अ^{३}$, $अ^{४}$, $अ^{५}$ आदि से निरूपित चेतन असंख्य निश्चित होते हैं और विभिन्न मानने पड़ते हैं।

किंतु चेतन को गुणों से परे स्वीकार कर चुके हैं।

और यह बात निश्चित है कि भिन्नता का कारण केवल गुण होते हैं। गुणों ही की तुलना से भेद का पता लगता है। क्योंकि तुलना करना और वस्तुओं की भिन्नता को स्थिर या स्वीकार करना बुद्धि का काम है और बुद्धि की पहुँच गुणों से परे नहीं।

अतः चेतन जो गुणों से परे है, भिन्नता और पृथकता की सीमा में नहीं, इसलिये चेतन विभिन्न नहीं हो सकते और जब चेतन में भिन्नता की गति नहीं तो असंख्य होना क्या अर्थ रखता है?

किंतु उपर्युक्त कल्पना अ $अ^{१}$, $अ^{२}$, $अ^{३}$, $अ^{४}$, $अ^{५}$ आदि से विविध शरीरों में विविध चेतन का होना पाया जाता है अर्थात् एक मिथ्या परिणाम तक पहुँचाती है, अतः उपर्युक्त

कल्पना मिथ्या है; अर्थात् आम के नाम-रूप (गुणों) में जो (सत्, चित्, आनंद) चेतन संसर्ग कर रहा है उसे अ[1] से निरूपण करके फिर मिसरी के नाम-रूप (गुणों) में जो चेतन अ[2] संसर्ग कर रहा है, उसे अ[1] चेतन से विभिन्न ठहराना और भौंरा (अ[3]) सिंह (अ[4]) गंगा (अ[5]) आदि में अलग-अलग चेतन मानना बिलकुल अनुचित है। एक ही चेतन गुलाब में, आम में, मिसरी में, भौंरा, सिंह, गंगा आदि में विद्यमान है; अ पर कल्पित चिह्न बनाना अनुचित है।

अतः अ = अ[1] अ[2] अ[3] अ[4] अ[5] ... ...

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (साम० छां० प्र० ३ खं० १४ मं० १)

एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च।

(यजु० क० उ० व० ५ अ० १ मं० ६)

अर्थ—यह सब (नाम-रूप जगत्) ब्रह्म ही है। जैसे अग्नि सब संसार में व्यापक होकर नाना रूप में प्रकट हो जाती है, वैसे ही एक आत्मा सब नाम-रूपों के भीतर व्यापक होता हुआ प्रत्येक नाम-रूप में होकर बाहर प्रकट हुआ है।

एक ही गेली (लकड़ी) में बढ़ई चार जोड़ी किवाड़ तैयार करने का अंदाज़ा लगाता है। यदि मेज़ें बनानी स्वीकार हों, तो इसी गेली में तीन मेज़ों का तख़मीना निकालता है। बढ़ई के ख़याल में नौ कुर्सियाँ इसी गेली से निकल आती हैं। उसी गेली से छः बेंचें निकल आती हैं। उसी गेली में १५ स्टूल कल्पित होते हैं। उसी गेली में दो तख़्तपोश पाए जाते हैं और चीरने-फाड़ने के बिना ही उसी गेली में १२ ब्लैकबोर्ड दृष्टिगोचर होते हैं।

वैसे एक ही ब्रह्म (चेतन) रूपी गेली, जिसमें वास्तविक दृष्टि से कोई किसी प्रकार का परिवर्तन घटित नहीं होता, भाँति-भाँति के रूपों का कारण (अधिष्ठान) है। फिर जैसे एक ही सफ़ेद काग़ज़ पर अपने मन में चित्रकार कभी राम की, कभी कृष्ण की, कभी कालीदह की, कभी वृंदावन की, कभी काशी की तसवीरें खींच रहा हो और उसी स्वच्छ काग़ज़ पर गणितज्ञ अपने ख़याल में त्रिकोण, वर्ग, वृत्त, अंडाकार आदि शकलें पड़ा बना रहा हो और उसी सफ़ेद काग़ज़ पर कोई और व्यक्ति मनुष्य-गणना और गृह-गणना के कोष्टक बना रहा हो, वैसे एक ही चेतन (ब्रह्म) अद्वैत-स्वरूप में वैकुंठवासी अपने स्वर्ग के विविध रंगों के नक़्शे जमा रहा है और उसी चेतन (ब्रह्म) अद्वैत-स्वरूप में संसारी विविध भाँति के चित्र कल्पित कर रहा है और उसी चेतन (ब्रह्म) अद्वैत-स्वरूप में नारकी अपने नरक की प्रज्वलित अग्नि देख रहा है।

विविध धर्मों में बहुत-सी ऐसी किंवदंतियाँ चली आती हैं कि वे व्यक्ति जो अत्यंत सज्जन हो गए, अत्यंत पवित्र बन गए, सांसारिक इच्छाओं और शारीरिक बंधनों से बिलकुल विमुक्त हो गए बेहद सुधर गए, बिलकुल और के और हो गए, वे तत्काल स्वर्ग को चढ़ाए गए। साधारणतया ऐसी किंवदंतियाँ चाहे मिथ्या हों, किंतु वेदांत की दृष्टि से असंभव नहीं हैं। स्वर्ग के चढ़ाए जाने के यह अर्थ हैं कि उनके भीतर में इतना परिवर्तन हो गया कि सफ़ेद काग़ज़-रूपी चेतन में सांसारिक चित्रों को देखने के स्थान पर मनोहर वैकुंठ के चित्र देखने लगे और अपने शरीर को मनुष्य के स्थान पर देवता का शरीर पाया।

पर यह संसार देखा तो क्या और नरक-स्वर्ग देखे तो क्या, वास्तविक तत्त्व न यह है, न वह है। जितनी द्वैत या नानात्व और भेद-दृष्टि है, वास्तविक दृष्टि से सब असत्य और निर्मूल है।

"मिथ्या" किसको कहते हैं ? जो वस्तु दिखाई तो दे, किंतु जब उसके अधिष्ठान को देखा जाय तो न रहे। जैसे चाँदी जो सीप में दृष्टिगोचर होती है, सीप (अधिष्ठान) को देखने पर नहीं रहती, या साँप जो रस्सी में दिखाई देता है, रस्सी (अधिष्ठान) को देखते ही नहीं रहता। अतः वेदांत-शास्त्र के शब्दों में "मिथ्या" वह है जो अपने अधिष्ठान में अत्यंताभाव का प्रतियोगी है।

सर्वेषामपि भावनामाश्रयत्वेन सम्मते।
प्रतियोगित्वमत्यंताभावं प्रतिमृषात्मता ॥ ११ ॥
अंशिनः स्वांशगात्यंताभावस्य प्रतियोगिनः।
अंशित्वादितरांशीव दिगेषैव गुणादिषु ॥ १२ ॥

(चितसुखी)

अर्थ—संसार की समस्त वस्तुओं के लिये आश्रय का होना आवश्यक है, किंतु प्रत्येक वस्तु के अपने आश्रय में उस वस्तु का अत्यंताभाव पाया जाता है। अतः सांसारिक वस्तुओं का अस्तित्व असल आश्रय में उनके अत्यंताभाव का प्रतियोगी है। और यही है वस्तुओं का मिथ्या होना।

व्याख्या—सामान्य दृष्टि से कंगन का आश्रय सोना है, पट का आश्रय सूत है, आदि। पट के मिथ्या होने के यह अर्थ हैं कि जिस आश्रय (अर्थात् सूत) में विद्यमान होने का पट को दावा है, उस आश्रय अर्थात् सूत का तार-तार पुकार रहा है कि मुझमें पट नहीं है। स्वर्णकार

की दृष्टि से जो कंगन विद्यमान है, उसका आश्रय सोना है, किंतु सर्राफ़ की दृष्टि कहती है कि स्वर्ण की दृष्टि से कभी कंगन हुआ ही नहीं।

अब पट आदि का अस्तित्व अपने आश्रय (सूत) के बिना और कहीं कदापि कल्पित नहीं हो सकता (इस बात से इन्कार करना ऐसा है जैसे दावात का हाथी हो जाना स्वीकार कर बैठना)।

और पट आदि के निज आश्रय का अस्तित्व उन वस्तुओं को अपने में कदापि आश्रय नहीं देता। अतः वस्तुओं की प्रतीति का निर्मूल (मिथ्या) होना उचित प्रतीत होता है और इस परिणाम से किसी प्रकार बचाव नहीं हो सकता, यदि रोटी खाई न जाय तो पेट पर बाँधनी होगी।

ऊपर दिखा आए हैं कि संसार की समस्त वस्तुओं का वास्तविक आश्रय एक ब्रह्म ही ब्रह्म है जिसको अ से निरूपण किया जा चुका है। इस ब्रह्म को समस्त गुणों का आश्रय और समस्त वस्तुओं का अधिष्ठान क्यों कहा गया था?—सांसारिक नाम-रूप की आवश्यकतानुसार।

अन्यथा अद्वैत-स्वरूप (ब्रह्म) की दृष्टि से आश्रय होना-हवाना क्या अर्थ रखता है? (१) ब्रह्म को निर्गुण स्वीकार किया गया था। जब ब्रह्म में गुणों का प्रवेश ही नहीं, तो आश्रय होने का गुण भी उसमें क्यों? ब्रह्म का रूप रेख लेख नहीं, उसका आकार नहीं और उसमें कोई राह नहीं, कोई छिद्र नहीं, तो संसार उसमें किधर से घुस सकता है? जगत् की उसमें गुंजायश कहाँ?

समस्त नाम-रूप इधर तो बिना आश्रय के रह नहीं सकते और उधर आश्रय (ब्रह्म) अन्य को आश्रय नहीं

देता। इधर तो तीक्ष्ण धूप और कृपाण-धारा कंठ तर करने को खड़े हैं और उधर चूहे मशकें कुतर गए हैं। अतः नाम-रूप संसार को 'अलअतश-अलअतश' (राम-राम सत्य है) कहते हुए मिथ्यापन के करबला (मरघट) में खेत रह जाना (शहीद हो जाना) आवश्यक प्रतीत होता है।

लोभी पुरुष सीप को चाँदी पड़ा देखे, डरपोक व्यक्ति रस्सी को साँप पड़ा कहे; पर सीप चाँदी को और रस्सी साँप को अपने बीच में कब घुसने देते हैं। राम (परमेश्वर) में लोक और परलोक का प्रवेश होना क्या अर्थ रखता है ?

१२ वें श्लोक का तात्पर्य—जो वस्तुएँ परमाणुओं से बनी हैं (और परमाणुओं से निर्मित संसार में क्या नहीं है ?) वे प्रतियोगी हैं अपने अत्यंताभाव की जो उनके आश्रय (परमाणुओं) में है। जितनी परमाणुओं से युक्त (वा विभाग-योग्य) वस्तुओं की परीक्षा करोगे, उनका यही हाल पाओगे। अतः सब की सब वस्तुओं का मिथ्या होना स्पष्ट है।

व्याख्या—भूमि छोटे छोटे परमाणुओं से निर्मित है, पानी नन्हें-नन्हें बिंदुओं से बना होता है, काल सैकंड पल आदि खंडों से बनता है, शक्ति (Force) सदैव अपने असंख्य विभिन्न परमाणुओं (components) का प्राप्त-फल (resultant) या मिश्रण होती है। वैशेषिक मत का यह सिद्धांत प्रत्यक्षतः समस्त सृष्टि पर लागू है। वेदांत का इसमें यह कथन है—"माना कि समस्त वस्तुओं का प्रत्यक्षतः आधार या आश्रय उनके परमाणु हैं, किंतु आश्चर्य है कि आश्रय की ओर से कभी आश्रित (अधिष्ठेय) हुआ ही नहीं।"

(१) बर्फ पिघली पानी बन गया, पानी से भाप बन गई, किंतु आश्रय के विश्वास से H_2O (हाइड्रोजन+ (ऑक्सीजन) न बर्फ थी, न पानी और न भाप।

H_2O (हाइड्रोजन+ऑक्सीजन का मिश्रण) ज्यों का त्यों हूबहू बना रहा। परिवर्तन या परिणाम केवल नाम-रूप (माया) में हुए।

(२) हीरा—स्वच्छ निर्मल, अत्यंत चमक-दमक, महान् आब-ताब, वज्रादपि कठोर, अल्प-लभ्य, बहुमूल्य। एक बेर अनमोल हीरा (कोहनूर) का मूल्य आधे जगत् की संपत्ति लगाई गई थी।

ग्रेफ़ाइट, कोयला और दीपक का काजल—अत्यंत काले और ऐसे नरम कि काग़ज़ आदि पर अपना चिह्न छोड़ दें, सब स्थान पर अधिकता से उपस्थित और मुफ़्त के मोल प्राप्त।

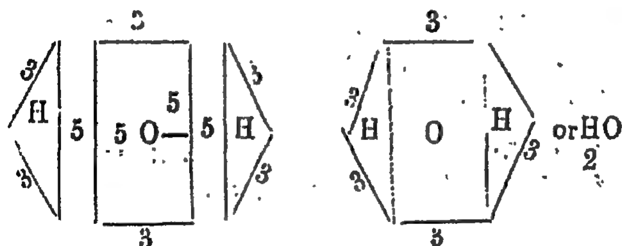
विज्ञान दिखाता है कि तात्त्विक-दृष्टि से यह परस्पर विरुद्ध गुण (धर्म) वाली वस्तुएँ बिलकुल एक ही हैं, एक ही कारबन हैं। यदि एक ही हैं, तो इनमें विस्मित कर देनेवाली भिन्नता कहाँ से आई? केवल परमाणुओं की लगावट बनावट रूप (Form-माया) के कारण। Form (माया-आकृति) विचित्र विस्मयोत्पादक है जो एक ही कारबन को इधर हीरा और उधर कोयला कर दिखाती है।

(३) डाक्टर 'पालकेयर्स' का एक उदाहरण इस माया की सारी माया खोल देता है।

कल्पना करो, हमारे पास काग़ज़ या लकड़ी की बनी हुई एक समानांतर-चतुर्भुज (३×५) है, और दो एक

जैसी समकोण त्रिकोण हैं जिनके कर्ण (hypotenuse) ५ हैं और बराबर भुजें (sides) ३ हैं।

समानांतर-चतुर्भुज के दोनों ओर त्रिकोणों को इस प्रकार लगाओ कि समानांतर-चतुर्भुज की बड़ी भुजाओं पर त्रिकोणों के कर्ण (hypotenuse) अनुकूल होजायँ। ऐसा करने से एक षट्कोण (षट्भुज) बन जायगा जिसका प्रत्येक भुज ३ है। समानांतर-चतुर्भुज समान-चतुर्भुज की अवस्था (आकार) से लुप्त हो गया और त्रिभुज त्रिभुजों के रूप में न रहे। एक नया रूप प्रकट हो आया। एक षट्कोण (षट्भुज) लब्ध हुआ जो अपने अंगों (चतुर्भुजों और त्रिभुजों) के गुण को खो बैठा है, और अब ऐसे गुण रखता है जो उसके अंगों (चतुर्भुजों और त्रिभुजों) में विद्यमान न थे।



त्रिभुजों के और चतुर्भुज के लम्बे भुज (कर्ण) ५ इस वर्तमान षट्कोण (वा षट्भुज) में नितांत नहीं। षट्कोण छः अधिक कोण (बहिर्लंब-obtuse angles) रखता है यद्यपि त्रिभुजों में दो-दो न्यून कोण (acute angles) पाये जाते थे और चतुर्भुज में चार समकोण (right angles)। न तो त्रिभुजें समभुज थीं और न समानांतर-चतुर्भुज, किंतु षट्भुज (षट्कोण) समभुज है।

(४) हाइड्रोजिन के गुण और हैं, आक्सीजन के और। किंतु उन तत्त्वों से मिश्रित जल बिलकुल अलग-थलग है, वस्तु ही निराली है। यह निरालापन, यह अनोखापन (विचित्रता) कहाँ से आई? केवल रूप (Form-माया) से। कुछ लोगों का खयाल है कि मिश्र-पदार्थ के विशेष गुण पहले किसी न किसी गुप्त रूप से अपने अपने आश्रय में अवश्य विद्यमान रहते हैं, किंतु उपरि-लिखित रेखागणित का उदाहरण इस विचार का स्पष्ट खंडन करता है। षट्कोण (षडस्रः) एक नितांत नया रूप है जो न तो अपने इस अंश में निहित था और न उस अंश में छिपा बैठा था।

अतः समस्त ब्रह्मांड केवल नाम-रूप का खेल है, और सब के सच्चे आश्रय (ब्रह्म) में निष्ठा हुए पर तो जगत्-वगत् न कभी हुआ था, न है, न होगा।

आप ही आप हूँ यहाँ ग़ैर का कुछ काम नहीं।
ज़ाते-मुतलक़ में मेरी शक्ल नहीं नाम नहीं॥

भेदोऽयं भिन्नधर्म्मि प्रतिभटविषयज्ञानजज्ञान वेद्यो।
धर्म्यादेर्भेदसिद्धिः पुनरपि च तथेत्यापतेच्चानवस्था॥
("स्वराज्यसिद्धिः" वार्तिककारसुरेश्वराचार्य (मंडनमिश्र) कृत)

अर्थ—वस्तुओं का पारस्परिक भेद तो तब उत्पन्न होता है, जब उनकी परस्पर तुलना की जाय, किंतु परस्पर तुलना तब हो सकती है जब उन वस्तुओं में पहले भिन्नता और भेद-भावना हो। इसी प्रकार यह भेद और भेद-भावना तुलना का परिणाम है और तुलना फिर भिन्नता और भेद-भावना के बाद आती है। यह चक्र (अनवस्था दोष) नानात्व (द्वैत) को घेरे हुए है।

श्रीगोविंदपादाचार्य जी कहते हैं—

उत्तमाङ्गानि पुष्पाणि वर्तंते सूत्रके यथा।
उत्तमाद्यास्तथा देहा वर्तंते मयि सर्वगे॥

अर्थ—जैसे एक धागे में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ प्रकार के फूल गूँथे हुए हैं, वैसे सब में सामनेवाले मुझ (आत्मा) में उत्तम मध्यम और कनिष्ठ शरीर पिरोए हुए हैं।

यथा न संस्पृशेत् सूत्रं पुष्पाणामुत्तमादिता।
तथा नैकं सर्वगं मां देहानामुत्तमादिता॥

अर्थ—जैसे फूलों की उत्तमता, मध्यमता, और कनिष्ठता तार पर कुछ प्रभाव नहीं डालती, वैसे शरीरों का उत्तम, मध्यम और कनिष्ठपन मुझ सर्वव्यापक आत्मा का तनिक भी बिगाड़ नहीं कर सकता।

पुष्पेषु तेषु नष्टेषु यद्वत् सूत्रं न नश्यति।
तथा देहेषु नष्टेषु नैव नश्यामि सर्वगः॥

अर्थ—जैसे उन समस्त फूलों के नष्ट हो जाने पर तार को कुछ हानि नहीं, वैसे शरीरों के नाश हो जाने से मुझ सर्वगत आत्मा को तनिक भी क्षति नहीं पहुँचती।

की करदा नी! की करदा,
तुसी पुछाखां दिलबर की करदा (टेक)

इकसे घर विच वसदयां रसदयां,
नहीं हुँदा विच परदा। की करदा० ॥ १ ॥

विच मसीत नमाज़ गुज़ारे,
बुतख़ाने जा वड़दा। की करदा० ॥ २ ॥

आप इको, कई लाख घर अन्दर,
मालिक हर घर घर दा। की करदा० ॥ ३ ॥

मैं जित वल देखां, उत वल ओही,
हर इक दी संगत करदा। की करदा० ॥ ४ ॥

मूसा ते फरऔन बना के,
दो होके क्यों लड़दा। की करदा० ॥ ५ ॥

यों—एक ही घर में रहते हुए पर्दा नहीं हुआ करता मगर मेरा प्रियतम मेरे दिल रूपी घर में रहते हुए पर्दे में छिपा हुआ है; इसलिये ऐ लोगो ! तुम इस दिलबर (प्यारे आत्मा) को पूछो कि तू यह क्या पुरफ़न-ख़िल्वत गैन कर रहा है ॥ १ ॥

कहीं तो मसजिद में छिपकर बैठा रहता है और उसके आगे नमाज़ होती है और कहीं मन्दिरों में दाख़िल हुआ है जहाँ उसकी पूजा हो रही है; इसलिये ऐ लोगो ! दिलबर को पूछो कि तू क्या कर रहा है ॥ २ ॥

आप स्वयं तो एक अद्वितीय है मगर लाखों घरों (दिलों) के अन्दर प्रविष्ट हुआ हुआ हर एक घर का स्वामी बना हुआ है; इसलिये ऐ लोगो ! तुम दर्याफ़्त करो कि यह दिलबर (प्यारा) क्या कर रहा है ॥ ३ ॥

जिधर मैं देखता हूँ उधर दिलबर ही नज़र आता है और हर एक के साथ वही (मिला बैठा) नज़र आता है; इसलिये ऐ लोगो ! आप दर्याफ़्त करो कि दिलबर (ईश्वर) क्या कर रहा है ॥ ४ ॥

मुसलमानों में हज़रत मूसा और हज़रत फ़रऊन हुए हैं जिनमें खूब झगड़ा हुआ था, इन दोनों को बनाकर या इस तरह से आप ही दो रूप होकर यह दिलबर क्यों लड़ता और लड़ाता है; इसलिये ऐ लोगो ! आप दर्याफ़्त करो कि यह दिलबर क्या करता है ॥ ५ ॥

सुणा रहा विच हर हर घरदें, भुल्ली फिरे लुकाई जे ।
की करदा पै परवाही जे ॥

I looked above and in all spaces saw but one;
I looked below and in all billows saw but one;
I looked unto its heart, it was a sea of worlds;
A space of dreams all full, and in the dreams but one;
Earth, air, and fire and water, in thy fear dissolve;
Ere they ascend to thee, they trembling blend in one.
The heavens shall dust become, and dust be heaven again,
Yet shall the one remain and one my life with thine.

अर्थ—मैंने ऊपर दृष्टि उठाकर देखा और समस्त आकाश में मुझे एक ही दिखाई दिया। मैंने नीचे दृष्टि की और समस्त मौजों में एक ही देख पड़ा। मैंने उसके मन में (अर्थात् भीतर) देखा। उसमें सृष्टियाँ भरी हुई थीं और एक आकाश स्वप्नों से भरपूर उसमें पाया और उन स्वप्नों में सिवाय एक के और कोई न था (या और कोई दिखाई न दिया)। ऐ प्यारे! पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल तेरे भय के मारे पिघल जाते हैं और तुझ तक पहुँचने से पहले काँपते हुए एक में मिल जाते हैं। आकाश पृथ्वी हो जायँगे और पृथ्वी आकाश हो जायगी, तो भी वह एक स्थिर रहेगा और मेरा जीवन तेरे साथ एक होगा।

एक साधु की गुदड़ी (कन्था) चोरी हो गई। किसने चुराई? कौन चोर पड़ा? एक कान्सटेबिल (कदाचित् परीक्षा के लिये चुरा ली होगी!)। चौकीदार ही चोर बन गया (न जाने किस विचार से)। साधु पुलीस-स्टेशन (थाने) के कहीं आस-पास ही रहता था। मौज में आकर रिपोर्ट लिखवाने गया—"लुट गया! लुट गया!! ग़रीब लुट गया!!!"

चोरी-गए माल की रिपोर्ट

थानेदार—तुम्हारा क्या गया है?

साधु—सब कुछ। एक तो रज़ाई खो गई है।

थानेदार—और क्या? साधु—बिछौना।

"	और क्या?	"	चादर।
"	और क्या?	"	कोट और अँगरखा।
"	और क्या?	"	तकिया।
"	और क्या?	"	आसन।

थानेदार-कुछ और ? साधु-हाँ, छुरी भी जाती रही है।

थानेदार—बस इतना ही कि कुछ और भी ?

साधु—हुजूर ! धोती भी चोरी हो गई।

थानेदार—खूब स्मरण कर ले।

साधु—और... ... ... और ... ...

वह कान्सटेबिल जिसने चोरी की थी, पास ही खड़ा था। चोरी-गए माल की इतनी लंबी तालिका (फ़ेहरिस्त) सुनकर बेबस हँस पड़ा और गाली देकर बोला—"और-और बोले जाता है ! तेरा चोरी गया माल बस भी होगा कि नहीं ? तेरी झोपड़ी है कि सौदागर की कोठी ? इतना असबाब कहाँ से आ गया ?"

यह कहकर पुलिसमैन (कान्सटेबिल) साधु की गुदड़ी उठा लाया और थानेदार की ओर मुख करके बोला—"हुजूर बस, केवल इतना तो इसका चोरी-गया सब माल है और इसने दर्जन भर चीज़ें गिन मारीं।"

थानेदार—(साधु से) क्या तू पहचान सकता है कि यह गुदड़ी तेरी है ?

साधु—हाँ मेरी है; और किसकी ?

इतना कहा और झटपट गुदड़ी कंधे पर डाल थाने से बाहर दौड़ चला।

थानेदार ने सिपाहियों को आज्ञा दी, इसे चट पकड़ लो जाने न पाए। और साधु को धमकाकर कहा—"तेरा चालान होगा, तूने झूठी रिपोर्ट क्यों लिखवाई ? हमको धोखा देना चाहा ?"

साधु, जो देह और प्राण की चिंता एवं पाप-पुण्य के बंधन से बिलकुल मुक्त था, भय और आशा से आबद्ध

(थानेदार) की रुष्टता को क्या समझता था, मुसकाकर उत्तर दिया—"हम झूठ बोलनेवाले नहीं हैं।"

यह कहा और उसी गुदड़ी को ओढ़कर बताया—"यह देखो मेरी रज़ाई।" उसी गुदड़ी को नीचे बिछाकर बताया "यह देखो मेरा बिछौना।" धूप में उसी गुदड़ी को सिर पर रखकर कहा—"यह देखो मेरी छतुरी।" गुदड़ी को तहाकर नीचे डाला, और ऊपर बैठकर कहा—"यह देखो मेरा आसन।" इत्यादि।

वह व्यक्ति जिसने विश्व के आश्रयदाता (ब्रह्म) का जाना है, उसका तो सभी कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म हो गया। संबंधी और निकटवर्ती हैं तो ब्रह्म; शासक और शासित हैं तो ब्रह्म; प्रेम करनेवाले या वैर रखनेवाले हैं तो ब्रह्म; माता, बहन, भाई हैं तो ब्रह्म; उसके बाग़ और विटप ब्रह्म; उसकी लेखनी और कृपाण ब्रह्म। उसके लिये तो ब्रह्म ही साधु की गुदड़ी है। सारा घर बार जायदाद ब्रह्म है। अपना तो प्रभात और सायं यही है।—

लबे-साक़ी मिरा हम जामो-हम नुक़्लस्तो-हम बादा।

अर्थ—साक़ी (मस्तों की शराब पिलानेवाले) का ओष्ठ जो है, वही मेरा प्याला, नुक़्ल और शराब है।

तैं बिन मेरा सगा न कोई, अम्मा बाबल भैन न भाई।
प्यारे! बसकर बहुती होई, तेरा इश्क़ मेरी दिलजोई॥
मैं विच मैं न रह गई राई, जब कि प्यारे सँग प्रीति लगाई।
कदे जा आसमाने बैहन्दे हो, कदे इस जग दे दुःख सहन्दे हो॥
कदे पीरे मुग़ाँ हो बैहन्दे हो, मैं ताँ इकसे नाच नचाई।
मैं विच मैं न रह गई राई, जद कि पिया सँग प्रीति लगाई॥

ऐसा साधु रंक से राव तक की परवाह न रखनेवाला अपने अनुभव से सिद्ध करता है कि एक ही तत्त्व

(ब्रह्म) प्रत्येक रंग में प्रकट हो रहा है; यही सूर्य बनकर चमकता है, यही अंधकार (अज्ञान) रूपी सागर बनकर उछलता है; फूल में, काँटों में, तूती और बुलबुल की चोंच में, जल में, थल में, नगर में, ऊजड़ में, हर मकान में, हर काल में एक ही परब्रह्म अविभक्त और अविभाज्य रूप से शोभायमान है। उस एक ही इंद्रजाली (मदारी) के पिटारे (थैले) में प्रत्येक वस्तु मिल रही है।—

असद्व्याकायकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्। (मनु० अ० ६)

तात्पर्य—इस पहचानवाला पाँचों इंद्रिय और मन बुद्धि (इन सातों द्वारों) से वास्तविक सत् (ब्रह्म) के बिना कुछ व्यवहार नहीं करता-अर्थात् देखता है तो ब्रह्म, सुनता है तो ब्रह्म, सूँघता है तो ब्रह्म, जो कुछ छूता है उसको ब्रह्म ही जानता है, जो कुछ चखता है उसे ब्रह्म ही पहचानता है, सोचता है तो ब्रह्म, समझता है तो ब्रह्म।

खांड का कुत्ता, गधा, चूहा, बिल्ला।
मुँह में डालो ज़ायक़ा है खांड का॥

ज्ञानवान् खांड ही से व्यवहार रखता है, कुत्ता, गधा, चूहा, बिल्ला आदि नाम-रूपों से लड़ाई-दंगा नहीं रखता।

चाक्षुप दृष्टि को अत्यंत छलनेवाले (optical illusions) और अद्भुत चित्र देखने-सुनने में आए—

(१) दाहिनी ओर से देखो तो राजा साहब हाथी पर जा रहे हैं, बाईं ओर से देखो तो घोड़े की लगाम पकड़े साईस खड़ा है, आनंद यह कि चित्र एक ही है।

(२) चित्र कमरे में लटक रहा है, किंतु उत्तमता यह कि सारे कमरे में कोई कहीं पर खड़ा हो, यही निश्चय होगा कि मुझसे आँखें लड़ा रहा है। यदि सौ मनुष्य एक ही समय वहाँ विद्यमान हों, तो उनमें से प्रत्येक को पूरा-पूरा

विश्वास होगा कि आँखें केवल मेरे ही साथ दो-चार हैं मेरे ही ओर टकटकी लगाए तस्वीर घूर रही है।

(३) किंतु बहुत काल की बात है कि एक अँगरेज़ी-पत्र में एक आश्चर्यमय अनोखे चित्र का विज्ञापन पढ़ा जिसका नाम (title) था "Here is the Bohemian with His Family, Where is the Cat ?" अर्थात् यह देखो बोहेमिया का निवासी अपने बाल-बच्चों सहित विद्यमान है, पर बताओ बिल्ली कहाँ है ?

इस चित्र में आनंद की बात यह थी कि जो मनुष्य उसे हाथ में लेकर ध्यान से देखना आरंभ करता था, उसे बोहेमिया का निवासी अपने स्त्री और पुत्रादिकों सहित तत्काल दृष्टिगोचर हो जाता था, रहट चलना भी दिखाई दे जाता था, लहलहाते खेत और छायावाले वृक्ष भी दृष्टि में चढ़ जाते थे, नदी का दृश्य भी आँखों-तले फिर जाता था। इसके अतिरिक्त हरियाली और पशु-पक्षी आदि बीसियों वस्तुएँ दीदों (नेत्रों) में समा जाती थीं, किंतु बिल्ली का नाम-चिह्न न मिलता। बिल्ली लुप्त, कहीं न मिलती थी, घंटों ढूँढा करो, ढूँढने में कोई बात बाक़ी न रक्खो, काग़ज़-भर को इस सिरे से उस सिरे तक छान डालो, किंतु बिल्ली के दर्शन मिलना दुर्लभ।

अंततः हारकर क्रोध से चित्र को दे पटका, तो ए लो ! ग़ज़ब हो गया ! आश्चर्य ! विस्मय ! बोहेमिया का निवासी क्या हुआ ? उसकी स्त्री और बच्चे कहाँ हैं ? रहट, खेत, पशु-पक्षी, उनमें से कुछ भी सामने न रहा। समस्त काग़ज़ बिल्ली ही बिल्ली बन गया। एक बिल्ली ने सब काग़ज़ को घेर लिया। जब बिल्ली आई, तो बाक़ी सब की सफ़ाई हो गई।—

जब हम थे तब तुम नहीं, अब तुम हो हम नाहिं।

यह उदाहरण शुक्ल यजुर्वेद संहिता के चालीसवें अध्याय के अधो-लिखित मंत्र का अर्थ बतलाता है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

अर्थ—जो कुछ देखो जगत् में, सब ईश्वर में ढाँप।
करो चैन इस त्याग से, धन लालच से काँप॥

इस मंत्र में सच्चे संन्यास (त्याग) का वास्तविक स्वरूप वर्णन किया है, साधु की यथार्थता बतलाई है।

मंत्र का तात्पर्य—(मंत्र का दूसरा भाग) यदि तुझको आनंद की कामना है तो सांसारिक पदार्थों में मत ढूँढ। रुपया में आनंद नहीं मिलेगा, ख्याति में नहीं मिलेगा, विषय भोग तुम्हें घोर पातक में फँसाएगा, विषय-भावना के पीछे लगकर पछताना पड़ेगा, अज्ञान के मिथ्या पाश में फँसकर शोक के सिवा कुछ हाथ न आएगा। संसार के भँवर में आकर पछतावे (पश्चात्ताप) के हाथ मलते रह जाओगे। संसाररूपी बोहेमिया के बिच में सच्चे आनंद का पता नहीं मिलने का? आनंद-प्राप्ति का यदि कोई मार्ग है, तो केवल एक त्याग है। त्याग बिना आनंद कभी नहीं मिल सकता।

न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः। (श्रुति)

अर्थ—न कर्म से, न संतान से, न धन से, वरन् केवल एक त्याग के द्वारा मनुष्य अमृतत्व को पा सकता है।

(श्रुति का प्रथम भाग) इस त्याग के अर्थ मंत्र के पहले भाग में दिखाए हैं अर्थात् वह त्याग जिससे समस्त दुःख दूर होते हैं, अंतःकरण की उस निर्मलता का नाम है जिससे अंतर्दृष्टि नामरूप संसार को, बोहेमिया के निवासी

और उसके कुटुंब के चित्र की भाँति, बिलकुल त्याग कर देती है, दृष्टि की भ्रांति में डालनेवाले नाम-रूपों से विमुक्ति हो जाती है, और एक आनंद (आत्मा) ही आनंद (आत्मा) बहार दिखाता है । यह सब कुछ ईश्वर (आत्मा) में ढक जाता है, जगत् का जगत्पन अँधेरे की भाँति प्रकाश (आत्मा) में लुप्त हो जाता है, सब संबंध मिट जाते हैं, सब बंधन छुट जाते हैं, नानात्व का चिह्न शेष नहीं रहता ।

दीदए-दिल हुआ जो वा—खुब गया हुस्ने-दिलरुबा ।
यार खड़ा हो सामने, आँख न फिर लड़ाए क्यों ?

बर आबे-हयाते-तो जहाँ हमचो हुबाब अस्त ।
ओ नीज़ चो बरबाद शवद बर सरश आब अस्त ॥

अर्थ—तेरे जीवन के जल पर संसार बुलबुले के समान है, ज्योंही कि वह नष्ट होता है, उसके सर पर पानी होता है (अर्थात् जब वह टूटता है, तो पानी हो जाता है) ।

शिवं सर्वगतं शांतं बोधात्मकमजं शुभम् ।
तदेक भावनं राम ! कर्मत्याग इति स्मृतः ॥

(योगवासिष्ठ निर्वाण प्रकरण)

अर्थ—ऐ रामचंद्र ! एक, सर्वगत, शांत, अज, आनंद और कल्याण-स्वरूप शिव को जान सब ओर से आँख फेरकर उसी एक तत्त्व-स्वरूप में भावित होना, इसी का नाम कर्मत्याग या संन्यास है ।

——:०:——

वेदांत-सिद्धांत-मुक्तावली

योऽहमद्वय वस्त्वेव सद्वये दृढनिश्चयः ।
प्राप्य चानंदमात्मानं सोऽहमद्वय विग्रहः ॥

अर्थ—वह एक "मैं" जो यद्यपि एकमेवाद्वितीयं हूँ, किंतु एक बेर द्वैत का पक्का विश्वासी हो गया था, अब आनंद (आत्मा) का अनुभव करके वही अद्वितीय-स्वरूप हूँ।

नास्ति ब्रह्म सदानंदमिति मे दुर्मतिः स्थिता।
क्व गता सा न जानामि यदाहं तद्वपुः स्थितः॥

अर्थ—"ब्रह्म सदानंद-स्वरूप नहीं है," यह मेरी दुर्मति थी। किंतु अब तो मैं वही ब्रह्म हूँ, न जाने वह दुर्मति कहाँ उड़ गई।

संसाररोगसंग्रस्तो दुःखराशिरिवापरः।
आत्मबोधसमुन्मेषादानंदाब्धिरहं स्थितः॥

अर्थ—संसार-रोग (नाम रूप) में ग्रसित हुआ मैं अन्य हो गया था, दुःखों की राशि और शोक का पहाड़ बन गया था। किंतु अब आत्मबोध के उन्मेष से आनंद का सागर बन गया हूँ।

योऽहमल्पेऽपि विषये रागवानतिविह्वलः।
आनंदात्मनि संप्राप्ते स रागः क्वगतोऽधुना॥

अर्थ—तब नाशवान् तुच्छ वस्तुएँ मेरे हृदय को विह्वल कर देती थीं; किंतु अब वह हलचल सब मिट गई, क्योंकि आनंदात्मा मैं स्वयं हूँ।

सीन—सुख हुई दुःख दूर हुए, देख मुख महबूब दे चन्द नूँ जी।
रैन चाँदनी देखके दुध जेही, पाया चित चकोर आनंद नूँ जी।
निका कत्त पटाड़ी पुर लीती, आगे झूर दी साँ इक तंद नूँ जी।
हुई मंगलाचार जैकार बोलो, लद्धा अंदरों बालमुकुन्द नूँ जी॥

यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वास्माँल्लोकात्प्रैति स कृपणः।
(श्रुतिः)

वेद कहते हैं—"जो व्यक्ति आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं करता और प्रत्यक्ष जगत् से मुख नहीं मोड़ता, वह कृपण (कंजूस-

नीच) है।" जैसे कंजूस धन-संपत्ति होने पर भी मक्खियाँ मारता रहता है और कष्ट सहता है, वैसे ही आत्मानंद के होते हुए मैं दुःख और शोक के गढ़े में गिरा था, धन्य है, अब छुटकारा मिला, कृपणता और नीचता से अब मुक्ति मिल ।—

बुल्हा शाह मुबारकाँ लख देवो ।
होई शांत जानी गल लाए के जी ॥

अहयुन्नास बनोयेद मुबारक बादम ।
फज़ सनमखानए-तन दर हरमे-जाँ रफ़्तम ॥

अर्थ—ऐ लोगो ! मुझको मुबारकबाद दो कि प्यारे के शरीर-रूपी मंदिर से अब उसके प्राण के हरम में चला गया हूँ, अर्थात् शारीरिक दृष्टि से उठकर आत्मिक दृष्टि में मग्न हो गया हूँ।

विशुद्धोऽस्मि विमुक्तोऽस्मि पूर्णात्पूर्णतमाकृतिः ।
असंस्पृश्य समात्मानमंतर्ब्रह्मांड कोटयः ॥

अर्थ—मैं विशुद्ध हूँ, विमुक्त हूँ पूर्ण (आकाश) से बढ़कर पूर्णतम (सर्व व्यापक) हूँ। असंख्य ब्रह्मांड मुझमें पड़े हैं, मैं असंस्पर्श्य हूँ, मेरा स्वरूप निर्लिप्त है।

परिणाम

वहाँ, जहाँ पर "कहाँ" ? निहाँ (छिपा) है—
(यहाँ वहाँ या कहीं न) ।
तब, जबकि "कब" भ्रम और भ्रांति है—
(अब तब और कभी न) ।
था, है, और होगा ।
क्या ? कौन ?
जिसमें "क्या ? कौन ?" नष्ट है ।
अल्ला-अल्ला, ख़ैर सल्ला—अर्थात् राम-राम, छुट्टी मिली ।

वहदत नामा

फकीरा ! आपे अल्लाह हो । (टेक)
आपे लाड़ा, आपे लाड़ी, आपे मापे हो ॥ १ ॥
आप वधाइयाँ, आप स्यापे, आप अलापे हो ॥ २ ॥
राँझा तूहीं, तूहीं राँझा, भुल हीर न वेले रो ॥ ३ ॥
तेरे जिहा सानूं एथे ओथे, कोई न जापे ओ ॥ ४ ॥
घुंड कढ के, क्यों चन मोंह उत्ते, आहले रहयों खलो ॥५॥
तूहीं सब दी जान प्यारी, तैनूं ताना लगे न को ॥ ६ ॥
बोली ताना, यारी सेवा, जो देखें तूं सो ॥ ७ ॥

अर्थ—आप ही तू स्वयं पति, आप ही पत्नी, और आप ही पिता माता है। इस लिये ऐ प्यारे ! तू आप ही ईश्वर हो, अर्थात् वस्तुतः अपने आपको ही तू ईश्वर निश्चय कर ॥ १ ॥

आप ही तू बधाई (आशीर्वाद), आप ही स्यापा और आप ही तू रोने पीटने का आलाप है। इसलिये ऐ प्यारे ! अपने आपको ही तू प्रभु अनुभव कर ॥ २ ॥

वास्तव में तू ही राँझा और तू ही हीर है, अपने आपको भूलकर तू हीर की खातिर वन वन में व्यर्थ मत रोदन कर ॥ ३ ॥

तेरे जैसा यहाँ वहाँ हमें कोई नहीं दीखता, इस लिये तू अपने आप को ही ईश्वर निश्चय कर ॥ ४ ॥

अपने चन्द्रमुख पर घूँघट निकालकर तू एक ओर क्यों खड़ा हो रहा है ? ऐ प्यारे ! अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ ५ ॥

तू ही सब की प्यारी जान है, तुझे कोई बोली-ठठोली नहीं लग सकती है। इस लिये तू अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ ६ ॥

बल्कि बोली-ठठोली, मित्रता, सेवा इत्यादि जो दीखता है, वह सब तू ही है। इस लिये अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ ७ ॥

सूली सलीब, ज़हर दे मुके कदे न मुकदा जो ॥ ८ ॥
बुकल विच वड़ यार ! जो सुत्ते, ओथे तेरी लो ॥ ९ ॥
तूहीं मस्ती विच शराबाँ, हर गुल दी खुशबो ॥ १० ॥
राग रङ्ग दी मिट्ठी सुर तूं, लैं कलेजा टो ॥ ११ ॥
लाह लीड़े, यूसफ घुट मिल लै, दूई दे पट ढो ॥ १२ ॥
आठवें अर्श तेरा नूर चमकदा, होर भी ऊँचा हो ॥ १३ ॥
यह दुन्या तेरे नौंहां दे विच, हथ गल ते रख न रो ॥१४॥
जे रब भालें बाहिर किधरे, पस गल्लों मुँह धो ॥ १५ ॥

सूली-सलीब और ज़हर के अन्त होने पर जो कदापि नहीं अन्त होता, वह तू है । इस लिये तू ही ईश्वर है, ऐसा निश्चय कर ॥ ८ ॥

प्यारे की बग़ल में प्रवेश होकर जब सोये तो वहाँ तेरा ही प्रकाश पाया, अत एव तू अपने आप को ईश्वर समझ ॥ ९ ॥

शराब में मस्ती और पुष्प में गन्ध तू है, इसलिये अपने आप का तू अनुभव कर ॥ १० ॥

कलेजे में चुटकियाँ भरनेवाली जो राग-रङ्ग की मीठी स्वर है वह तू है, अत एव तू अपने आप को ईश्वर समझ ॥ ११ ॥

द्वैत के वस्त्र उतारकर तू अपने प्यारे आत्मा (यूसफ़) को घुट कर मिल और इसप्रकार अपने आप को ईश्वर अनुभव कर ॥ १२ ॥

आठवें आकाश पर तेरा ही प्रकाश चमकता है, और तू इससे भी ऊपर हो और इस प्रकार अपने आप को ईश्वर अनुभव कर ॥ १३ ॥

यह संसार तेरे नाखुनों का खेल है, तू मुख पर हाथ रखकर मत रो, बल्कि अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ १४ ॥

यदि तू अपने से बाहिर कहीं ईश्वर ढूँढना चाहता है, तो इस बात से तू रो और ऐ फकीर ! तू अपने आप को ईश्वर मान कर ॥ १५ ॥

तू मौला नहीं बन्दा चन्दा, झूठ दी छड देखो ॥ १६ ॥
पवन इन्दर तेरी पण्डाँ ढोंदे, क्यों, तैनूं किते न ढो ॥ १७ ॥
काहनू पया खेड़ना हैं भौं भौं विलयां, बैठ निचल्ला हो ॥१८॥
तेरे तारे सूरज थई थई नचदे, तू वह जाकर चौ ॥ १९ ॥
पचे न तैनूं सुख ये ओड़क, पहो गिरानी खो ॥ २० ॥
दुःखहर्ता ते सुखकर्ता, तैनूं ताप गये कद पोह ॥ २१ ॥
चोर न पये, तैनूं भूत न चमड़े, हार गयो क्यों हो ॥ २२ ॥

तू स्वयं मालिक व प्रभु है, नौकर चाकर तू नहीं है। अपने आप को बद्ध जीव मानने का जो तेरा झूठा स्वभाव है, इसे तू छोड़ और अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ १६ ॥

पवन और इन्द्र देवता तो तेरा बोझ उठाते हैं फिर तेरी सेवा क्यों नहीं कभी करते ? बल्कि सर्व प्रकार से वे तेरी सेवा करते हैं, इसलिये तू अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ १७ ॥

प्यारे को इधर उधर ढूंढने की जो घूमन घेरी खेल है, इस खेल को अब तू क्यों खेलता है ! स्थिर होकर बैठ और अपने स्वरूप का अनुभव कर ॥ १८ ॥

तेरे आश्रय तारे और सूर्य थई थई नाच रहे हैं। तू स्वयं स्थिर होकर बैठा रह और इस तरह अपने स्वरूप का अनुभव कर ॥ १९ ॥

तुझे अनन्त सुख पचता नहीं है, इस बदहज़मी को तू दूर कर और अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ २० ॥

तू स्वयं दुःखहर्ता और सुखकर्ता है, तुझे कब तीनों ताप तपा सकते हैं ? तू ईश्वर है, ऐसा निश्चय कर ॥ २१ ॥

तुझे चोर नहीं पकड़ते और न भूत प्रेत तुझे चमट सकते हैं, फिर तू अपने से इतर क्यों हो रहा है ? और अपने आप में क्यों नहीं आता ॥२२॥

तूं साक्षी केहीं फईयां मारें, हुन थककर चल्लियाँ हैं सौ ॥२३॥
खुल्लियाँ तैनूं भऊ न खान्दे, लुक लुक कैद न हो ॥ २४ ॥
वहदत नूं कर कसरत देखें, गयों भैड़ा किधरों हो ॥२५॥
ताज तख़्त छड ठट्टी मल्लो, एस गल्लों तूं रो ॥ २६ ॥
छड़ के घर दियाँ खण्डां खीरां, की तोह चबावें तो ॥ २७ ॥
तेरे घर विच राम वसेन्दा, हाय कुट कुट भर न भो ॥ २८ ॥
राम रहीम सब बन्दे तेरे, तेथों वड़ा न को ॥ २९ ॥

तू साक्षी कौन सी फलियाँ मार रहा है अर्थात् कौन सा परिश्रम कर रहा है जो अब थककर सोने लगा है ? ऐ प्यारे, शीघ्र उठ, और अपने आप को ईश्वर अनुभव कर ॥ २३ ॥

स्वतंत्र (आज़ाद) होने में तुझे कोई राक्षस इत्यादि तो नहीं खाते, इसलिये छिप छिप कर क़ैद मत हो बल्कि अपने आप को ईश्वर निश्चय करके मुक्त हो ॥ २४ ॥

एकता को तू नाना करके देखता है । भेंगे नेत्रवाला तू कहाँ से हो गया है ? हृदय के नेत्र खोलकर तू अपने आप को ईश्वर अनुभव कर ॥२५॥

निज राज्य का ताज और तख़्त छोड़कर छोटी सी कुटिया तू ने ले ली है, इस मूर्खता पर तू रोदन मत कर और अपने स्वरूप का तू अनुभव कर ॥ २६ ॥

निज घर के स्वादिष्ठ भोजन छोड़कर फ़ूस व तूड़ी को तू क्यों चबा रहा है ? क्यों नहीं अपने को आनन्द स्वरूप आत्मा अनुभव करता ? ॥२७॥

तेरे घट में राम बस रहा है । हाय, वहाँ भुस कूट कूटकर मत भर, बल्कि उस स्वरूप का अनुभव कर ॥ २८ ॥

राम, रहीम सब तेरे बन्दे (सेवक) हैं, तुझसे बड़ा कोई नहीं है, इस लिये तू अपने आप को ईश्वर निश्चय कर ॥ २९ ॥

आप भगीरथ, आप ही तीरथ, बन गङ्गा मल धो ॥ ३० ॥
पर्दे फाश होवें सब करके, नङ्गा सूरज हो ॥ ३१ ॥
छड मोहरा, सुन 'राम' दुहाई, अपना आप न को ॥ ३२ ॥

गङ्गा को स्वर्ग से लानेवाला राजा भगीरथ तू आप है और आप ही तू तीर्थ है। स्वयं गङ्गा रूप होकर तू सब मल धो और इस तरह अपने आप को ईश्वर अनुभव कर ॥ ३० ॥

ईश्वर करे तेरे सब पर्दे खुलें और तू सूर्यवत् नितान्त नङ्गा हो ॥ ३१ ॥

तू संसार-रूपी खेल या विषयभोग-रूपी विष को त्याग, ऐसी राम की पुकार है; इसे सुन, बल्कि अपने आप को ईश्वर निश्चय करके निज स्वरूप का साक्षात्कार कर और अपने आप का नाश मत कर ॥ ३२ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ

राम राम राम



आनंद ।*

(उर्दू मासिक पत्र 'रिसाला अलिफ़' में प्रकाशित स्वामी रामका प्रथम लेख)

ओ इस विषय (लेख) से दृष्टि लड़ाने वाले प्यारे ! ज़रा उस दिन को याद कर जब कि तेरा आनंद माता के आँचल के तले ढका था, माता की आस्तीन से बँधा था। स्वर्गीय-सुंदरियाँ बुलाती हैं, अप्सराएँ गोद में लिया चाहती हैं, किंतु तुम हो और माँ का दुपट्टा। आप छिपते हो, मुखड़ा छिपाते हो। राजा साहब बुलाते हैं, मैजिस्ट्रेट साहब याद फ़रमाते हैं; तुम्हारी बला से, तुम तकते तक नहीं; वरन् अपसरा मुखी कपोल वालों और वैभववानों पर सचमुच पेशाब करना आप ही का काम था। एम० ए० और एल० एल० डी० की तुम्हारे आगे कोई बिसात ही

* नोट—अमरीका जाने से पहिले स्वामी रामतीर्थ ने अपने गृहस्थाश्रम में ही उर्दू-भाषा में कई एक लेख सन १६०० के आरम्भ मे लिखे थे जो मासिक पत्र रिसाला अलिफ़ में क्रमशः प्रकाशित हुए थे। उनमें सब से पहिले यह आनन्द विषय का लेख है जो रिसाला अलफ के प्रथम अंक में छपा था। यद्यपि यह विषय (आनन्द) वही है जिसपर राम ने नये ढंग से अंग्रेज़ी भाषा में अमरीका में व्याख्यान दिया था, पर दोनों की शैली भिन्न २ और ढंग विचित्र २ हैं, अतएव इस उर्दू लेख का भी हिन्दी अनुवाद किया गया है जिससे पाठक गण राम की लेखनी से भी परिचित हो जायँ।

नहीं। बहु-मूल्य पुस्तकें तुम्हारे ख़्याल में केवल फाड़ देने को बनाई गई थीं। क्यों जी ! कैसे सुखी थे उन दिनों ? सब देखने वाले बलाएँ लेते हैं, भाई न्यौछावर हुआ चाहते हैं, बहनें अपने आपको न्यौछावर करने को तैयार हैं। पिता के प्यारे, माता की आँखों के तारे। ओढ़ने की फ़िकर न विछौने का ज़िकर। सच है—

मासूम के वहिश्त सदा हम-रकाब हैं।

Heaven dwells with us in infancy.

यह वही दिन हैं जहाँ दृष्टि में न लोक है न परलोक, न जीव है न ईश्वर, न मैं है न तू, न गुण हैं न दोष, न धृष्टता है न लज्जा, सुंदरियों के हाव भाव और कटाक्ष नितान्त निस्सार, संसार की सुख-समृद्धि अत्यन्त निरर्थक।

आपत्ति—धन्य हैं वह महापुरुष जो शिशुपन से लेकर समस्त अवस्थाओं को पार करके विज्ञानस्वरूप हो दुबारा बच्चे के समान सब दुःख-सुखरूपी द्वंद्वों से छुटकारा पा चुके हैं, और इस पद्य के वाच्य हैं कि—

इंतहाए-कार जो थी इब्तिदाए-कार थी।

अर्थात् जो साधन वा कर्म का परिणाम था, वही उस का आरम्भ था।

ऐ पाठक ! स्मरण रहे, यह महात्मा ऊपर से प्यारे-प्यारे भोले-भाले वही हैं जिनका काम है ईश्वर की छाती पर कूदना। इंद्र आदिक देवता उनको हाथों पर उठाते हैं, ब्रह्मा आदिक उनपर वारे वारे जाते हैं, किंतु कैसी बेपरवाही ! कि आँख उठा कर देखते भी तो नहीं। चारों वेद उन्हीं की प्रशंसा और स्तुति करते हैं।—

धूलि तिन्हाँदी जे मिले नानक दी अरदास।

कुछ बहुत समय नहीं बीतने पाता कि बच्चे का आनंद अपना मुख्य स्थान परिवर्तन करता है। अब खेल कूद में जो आनंद है वह और कहीं नहीं। यहाँ तक कि माँ भी बिसर जाती है। विद्या-कला, धन-मान का तो पूछना ही क्या है।

थोड़ा समय और बीतता है कि आनन्द का चक्कर अपना केंद्र किताबों को बना लेता है। अब न खेल सूझती है न कसरत; न माँ याद है न सौंदर्य और तमाशा।

कुछ समय के पश्चात् नौकरी आदि मिली। आनंद लक्ष्मी के कौतुक में आ स्थिर हुआ। अब रुपया की टंकार जैसा कोई राग ही नहीं, धन इकट्ठा करने से श्रेष्ट कोई काज ही नहीं।

इस जड़ माया के आने पर चंचल माया (स्त्री)की लग्न में मग्न हो गया। वह रुपया जो शेष सब वस्तुओं से अधिक प्यारा था, स्त्री के लिये उस रुपये को एक प्रकार से तिलांजलि देना प्रसन्नचित्त से स्वीकार हुआ। अब कन-फटे गुरूजी (स्त्री) के रातके एकान्त के गुरुमंत्रों में आनंद जी ने आसन जमाया। किंतु इसको चैन कहाँ।

बहूजी और बाबूजी नन्हें की बाट ताकते हैं। हाय, कब हमारे घर में बालक खेलेगा, कब उस खिलौने से चित्त बहलेगा। बाबूजी तो अखबारों और डाक्टरों से नुस्खे दरियाफ़्त करते हैं और बहूजी गंडा तावीज़ साधु-फ़क़ीर की खोज में रहती हैं कि हाय, किसी यत्न से अपने यौवन के विटप में फल लगे। ज़र (धन) है, जेवर (भूषण) है, ज़मीन है; पर एकही वस्तु की कमी है, जिस बिना यह सब वस्तुएँ फीकी हैं। बच्चे के लिये बाबूजी अपनी अर्धाङ्गी की उपस्थिति में दूसरा व्याह करने को तत्पर हैं।

गंगा-माई की कृपा से बालक हुआ। आँखें मलते-मलते इकलौते पुत्र का मुख देखा। ऐसा सुख फिर कब होगा। आनंद से फूले नहीं समाते। नन्हाँ है कि एक तमाशा है। सारे कुटुंब की जान है। उससे एक पल का वियोग दूभर है। दफ़्तर में काम करते नन्हाँ ही आँखों के सामने फिरता है। गृहस्थी के आनंद की सीढ़ी का डंडा खतम हो चुका। माँ है कि इस बच्चे को चूमती नहीं, गौ की तरह चाटती है, अपनी ही जान, अपने ही देह प्राण भान करती है। दादी के प्रेम का तो कुछ पूछिए ही नहीं।

दौलत कोई दुनिया में पिसर से नहीं बेहतर।
राहत कोई आरामे-जिगर से नहीं बेहतर॥
लज़्ज़त कोई पाकीज़ा समर से नहीं बेहतर।
निगहत कोई बूए-गुले-तर से नहीं बेहतर॥
सदियों में इलाजे-दिले-मजरूह यही है।
रेहाँ है यही, राह यही, रूह यही है॥

माँ-बाप को आसायशो-राहत है पिसर से।
तल्ख़ी में भी जीने की हलावत है पिसर से॥
सं॰ जिस्म में आँखों में बसारत है पिसर से।
अय्यामे-ज़ईफ़ी में भी ताक़त है पिसर से॥
आरामे-जिगर कुव्वते-दिल, राहते-जाँ है।
पीरी में यह ताक़त है कि पयमुर्दा जवाँ है॥

बच्चा कुछ बड़ा हुआ। माँ के आँचल के ओझल ज़रा मुँह छिपाया और तोतली ज़बान से पिता को कहा "पा! झात"। इतने ही में माँ और बाप दोनों को बेसुध कर दिया, मन मोह लिया, चित चुरा लिया, माता-पिता गद्गद होगए।

भई! सच कहना यह अवस्था एक साधारण संसारी पुरुष के लिये आनंद की नसेनी का ऊंचा पाया है कि नहीं? न्याय की दृष्टि से देखो, तो मानना पड़ेगा कि इस अवस्था के बाद आनंद का सूर्य शिर पर से उतर जाता है। इसके बाद इधर तो जवानी की दोपहर ढलनी आरंभ होगी, और उधर बच्चा गुदगुदी के योग्य नहीं वरन् सुधारने योग्य हो जायगा। मारे हँसी के दोहरा होकर और सारा मुँह खोलकर बेखटके ठट्ठा लगाना फिर कहाँ? उसे देख फिर उसकी शिक्षा और अध्ययन की चिंता होगी, कभी-कभी ताड़ना भी हुआ करेगी। लड़का फिर हर्षपूर्ण नहीं, वरन् चिंतापूर्ण हो जायगा।

यह वर्णन स्पष्ट सिद्ध करता है कि हमारे बाबू साहब को जीवन के सैरो-सफर (यात्रा) ने सांसारिक आनंद की चोटी पर आन पहुँचाया। इस उच्चता पर बाबू साहब को खिला हुआ कमलपुष्प मिला।

नन्हाँ है गोल मोल कि इक कँवल फूल है।
नाज़ुक है लाल लाल अचंभा अमूल है॥

किंतु हमें बाबू साहब से क्या। हमें तो "आनंद" का इतिहास लिखना है। कैसे रूप बदले। कहाँ-कहाँ फिरा, माँ के आँचल तले, बच्चों के खेल कूद में, किताबों के पृष्ठों में, सोने की चमक-दमक में, फूलों के रंग और गंध में, मूर्तियों की मुस्कराती हुई आँखों में, स्त्री के चुंबन और आलिंगन में, और हस्खंड शिशु के प्यारे प्यारे लाल लाल मुस्कराते हुए ओष्ठों में।

ओ आनंद! क्या तू सचमुच इन्हीं स्थानों में बसता है?

दूसरा दृश्य

दोपहर का समय है। हमारे बाबू साहब कोट पगड़ी उतार दफ़्तर के काम में लगे हैं। पंखा हो रहा है। यह लो, लेमोनेड की बोतल खुली। बरफ़ डालकर बाबू साहब ने पी ली। प्यास नहीं बुझती। हाय गरमी!

बाबू साहब की उपस्थिति (विद्यमानता) में सब अधीन क्लार्क लोग साँस दाबे अपने-अपने काम में लगे हैं। कोई शिर नहीं उठाता।

टन टन टन टन टन............

बाबू साहब—रामा! सुन तो टेलीफ़ोन क्या कहता है? क्या खबर है, कुशल तो है?

नौकर को इतना कहा और न मालूम क्यों, काम छोड़ लपक कर स्वयं ही सुनने लगे। सुनना था कि हाय हाय करके छाती पीटना। क्या हुआ? कैसी खबर थी? कैसी प्राणशोषक घटना थी? हृदय छीलने वाली आवाज़ थी? सुनते ही आशालता पर बिजली गिरी। रंग उतर गया। ओंठ सूख गए। हाथ-पाँव फूल गए।—

काटो तो लहू नहीं बदन में।

सरकारी कागज़ और नोट जो खुले पड़े थे, संदूक़चे में झटपट बंद करना चाहते हैं, किंतु मन में यह अधीरता कि हाथ काम नहीं कर सकते। यज्ञोपवीत से बँधी हुई ताली से संदूक़चा बंद किया चाहते हैं, किंतु अँगुलियाँ भूल कर जाती हैं। जितनी ही शीघ्रता करते हैं उतनी ही देर हुई जाती है। बेहोशी में ही शिर पर पगड़ी और शरीर पर कोट रक्खा और दफ़्तर से बाहर भागे। बटन

कोई लगा और कोई नहीं लगा। किसी से सलाम की न किसी से राम राम। सब विस्मित हैं, भगवान्! क्या बात है? (टेलीफ़ोन के इस फर्कश स्वर ने वही हलचल डालदी जो बाँसुरी के मनमोहक स्वर ने ब्रज की गोपिकाओं में डाली थी)।

रामा—हुज़ूर! साईस को हुकुम दिया है, वह अभी फिटन लाया है।

बाबू साहब—अरे जलगए, जलगए! आग-आग ...

इतना कहा और अपनी मान-प्रतिष्ठा को ताक़चे पर रख खुले बाज़ार दौड़े। एक दौड़ती हुई ट्रामगाड़ी वाले को आवाज़ दी, हाथ उठाया-ठहरो ठहरो, और धम से अपने आपको ट्रामगाड़ी में जा डाला। मारे घबराहट के ट्राम-वाले को पुकार कर कहते हैं "जल्दी जल्दी", बस चले तो चाबुक और लगाम उसके हाथ से छीनकर घोड़ों को सरपट दौड़ा दें। सामने से प्रांत के गवर्नर साहब बहादुर की गाड़ी मिली [वही गवर्नर जिनकी सेवा में भारतवर्ष के धनिक उपस्थित होकर सलाम का अवसर जब पाते हैं, तो उसके बाद बरसों अपने इष्ट-मित्रों में बैठकर बड़े अभिमान से इसका ज़िक्र किया करते हैं]; किंतु इस समय हमारे बाबूजी की आँखों में संसार अँधेरा रूप हो रहा है। लाट साहब की गाड़ी पास से निकल गई और इनको मालूम ही नहीं पड़ा, सलाम भला क्या करते। ट्राम के भीतर दाहिनी ओर से मीठी-मीठी आवाज़ यह क्या आ रही है?—

ज़ुंबिश में होंठ ऐसे हैं नाज़ुक नफ़स के साथ।
जैसे हिले नसीम से पत्ती गुलाब की॥

"हुज़ूर! आपकी तेजोमय ललाट पर विषाद (उदासीनता) क्यों है? आज मुखमंडल पर तेज क्यों नहीं बरसता? वह कांति क्या हुई? ईश्वर के लिये हमें तो दया-दृष्टि से वंचित न रखिएगा"। प्यारे पाठक! जानते हो यह किसकी आवाज़ थी? यह एक चन्द्र-मुखी चंद्र-वदनी उरवशी-रूप सुंदरी का बोलना था जिस पर बाबू साहब का चित्त चिरकाल से आसक्त था, जिसके प्रणय का ध्यान कभी छूटता ही न था, जिसका चित्र हृदय के दर्पण पर दृढ़तापूर्वक अंकित था, जो तनिक काम-धंधे का आवरण उठा और चट दृष्टि उधर पड़ी। आज वह चंद्रवदनी शुक्र-नयनी माधुरी हाव भाव के साथ बाबू साहब से वाग्विलास कर रही है। किंतु हाय! हृदय-कमल पर कैसी तुषार-वर्षा हो गई कि प्रकाशमान सूर्य तो उदय हुआ, पर यह (कमल) न खिला—

लब अज़ गुफ़्तन चुनां बस्तम कि गोई।
दुहन बर चेहरा ज़खमे-बूदो-बेह शुद॥

अर्थ—मैं ने बोलने से ओष्ठ इस तरह बंद कर लिए मानो मुँह चेहरे के ऊपर एक घाव था और वह अच्छा हो गया।

नोट—क्यों भई! अपने घर की आग बुझाने के लिये कभी तुम भी ऐसे व्याकुल हुए? तुम्हारा सब सामान जल रहा है। अंतःकरण में आग लगी हुई है। तुम्हारी राजधानी (Rome) मटियामेट हो रही है। आत्मा का पता नहीं। शांति लुप्त है। स्वरूप का ज्ञान खोया हुआ है। किंतु है इस आग के बुझाने की चिन्ता? नीरो (Nero) की तरह घर-बार सब अग्नि के समर्पण करना और लुत्फ़ों में बैठकर गुलछर्रे उड़ाना कहाँ तक?

आँचे मा करदेम बर खुद हेच ना बीना न कर्द ।
दरमियाने-खाना गुम करदेम साहिब-खाना रा ॥
दिला ताके दरी काखे-मजाज़ी ।
कुनी मानिंद तिफ़लाँ खाकबाज़ी ॥

अर्थ—जो कुछ हमने अपने पर किया, वह किसी अंधे (मूर्ख) ने भी ऐसा नहीं किया। क्योंकि घर के भीतर हमने घर के मालिक को खो डाला है।

ऐ दिल ! तू इस कृत्रिम प्रासाद अर्थात् संसार में कब तक बच्चों की भाँति धूलि उड़ाता रहेगा ?

बाबूजी का घर

ट्राम से उतरने नहीं पाए थे कि दूर से धुआँ आकाश की ओर उठता दृष्टिगोचर हुआ। आगे बढ़े तो हाहाकार, क्रंदन-विलाप, आर्तनाद स्वागत करने को आगे मिले। घरके निकट स्त्री-पुरुषों के ठठ के ठठ लगे हुए पाए। पुलीस इन्सपेक्टर, सिपाही, मज़दूर, सहस्रों मनुष्य झुंड के झुंड इकट्ठा थे। कुहराम मचा था। आग चारों ओर लगी थी। हर ओर से ज्वाला उठ रही थी। यह शहतीर गिरा, वह धन्नी टूटी। तड़ तड़, चटाक चटाक। सैकड़ों मशकें और सैकड़ों घड़े भर-भर कर आते थे, किंतु पानी तेल का काम देता था। साल भर हुआ इस हवेली को तैयार हुए। इसमें बड़ी धूम-धाम से ब्रह्मभोज कराया गया था, दीन-दुखियों को रोटियाँ बाँटी गई थीं, बड़े उत्साह से हवन की अग्नि प्रज्वलित की गई थी। एक तो वह दिन था; आज वह दिन है कि समस्त भवन आहुतिरूप हो रहा है। वेद की ऋचाओं के स्थान में क्रंदन और रुदन की

ध्वनि हो रही है। लोग उस दिन भी एकत्रित थे जब हवेली बनी थी, आज भी एकत्रित हैं जब हवेली नष्ट हो रही है—

घर बनाऊँ खाक इस वहशतकदा में नासिहा।
आए जब मज़दूर मुझको गोरकन याद आ गया॥

वाह रे संसार! तेरी नश्वरता! वाहरे मनुष्य! तेरा प्राणसमर्पण! बहूजी और बाबूजी कहाँ हैं? दास-दासियाँ किधर हैं? नन्हाँ क्यों नहीं दिखाई देता? सब तड़प रहे हैं। और सब तो मकान के बाहर हैं, किंतु बच्चा घर के भीतर ही है।

बाबू साहिब संतप्त तो पहले ही से थे, यह हृदयविदारक खबर सुनने की देर थी कि मनमुकुर पर और भी ठेस लगी। अधीर होकर रोना आरंभ किया। कलेजा बल्लियों उछलने लगा। दुःखसे हाथ मलने लगे और चिल्ला-चिल्ला कर बोले "अरे! कोई मेरे हृदय-खंड (नन्हे) को बचाओ। उसकी जान के लाले पड़ रहे हैं। तलमला रहा है। अभी समय है। ऐसा न हो, जल भुनकर राख हो जाय। हज़ारों रुपया इनाम; जीवन-भर गुलाम रहूँगा। बचाओ, बचाओ! ईश्वर के लिये बचाओ।

बहूजी सोने के आभूषण उतार-उतार कर फेंक रही हैं कि यह लो, मेरे लालको मुझसे मिला दो। दादी छाती कूट रही है, "हाय मैं मरी, मेरा नन्हाँ, मेरा नन्हाँ!" सेवा करने वाली दासियाँ अलग बिलबिला रही हैं। बच्चे की दुखमय दशा ने हवेली के जलने और हज़ारों रुपयों के माल और असबाब के राख हो जाने की स्मृति से भुला दिया।

निस्संदेह, बच्चा ऐसी ही प्रिय वस्तु है। लाखों और करोड़ों रुपया की उसके सामने क्या बिसात (हकीकत) है।

संसार में सब वस्तुओं से अधिक प्यारा है बच्चा। किंतु बच्चे से भी प्रियतर कोई वस्तु है कि नहीं? देख लो, इस समय समस्त संपत्ति बच्चे पर निछावर कर देने को कह रहे हैं; किंतु ऐसा प्यारा बच्चा एक और वस्तु पर सचमुच बलिदान कर रहे हैं। वह क्या? प्यारे प्राण। "बाह बिंद मेरी"। हज़ारों रुपये जायँ, आभूषण जायँ, नन्हे के बचानेवालों के प्राण भी नष्ट हो जायँ, बला से; किंतु स्वयं बाबू साहिब या बहूजी आग के मुँह में नहीं कूद सकते। (इस घटना को देखकर भागवत का वह कपकपी लानेवाला दृश्य आँखों के सम्मुख खिंच गया जबकि प्यारा कृष्ण यमुनाजी में कूद पड़ा; समस्त ग्वाल-बाल और गोपियाँ किनारे खड़े हक्के-बक्के मुँह देखते रह गए; नंद और यशोदा मूर्छित हो गए; किंतु कालीदह-यमुनाकुंड-में कोई नहीं कूदा)।

ए लो! बच्चे की जान गई, किंतु बाबू और बहू ने अपनी जान रक्खी। अपनी आँखों के सम्मुख अपने आत्मज को अग्नि में स्वाहा होते हुए देखा। लोकोक्ति प्रसिद्ध है, जब बँदरिया के अपने पैर जलने लगते हैं, तब बच्चों को अपने पैर के नीचे दबालिया करती है।

तनिक इस शब्द को सुनना! आग फड़फड़ाती है?—नहीं नहीं, अग्नि देवता पुकार-पुकार कर उपदेश सुनाता है।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति।

(यजु० बृ०उ० अ० ४ ब्रा० ५ मं० ६)

अर्थ—पिसरे-खुशरू का तसर्रुफ़ कब है अपने बाप पर।
बाप तो आशिक़ हुआ था एक अपने आप पर॥

कैसी सन्नाटे की हवा चलने लगी। सायँ सायँ! यह वेद का संदेशा लाई है। ललकार ललकार कर सुना रही है—

स यथा शकुनिःसूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत, एवमेव खलु सोम्य! तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबन्धनं हि सोम्य! मन इति।

(साम॰ छां॰ उ॰ प्रपा॰ ६ खं॰७ मं॰ २)

तात्पर्य—

क़फ़स एक था आइनों से बना।
लटकता गुले-ताज़ा मर्कज़ में था॥
था फूल एक पर अक्स हर तर्फ़ थे।
थे माशूक़ सब बुलबुले-बंद के॥
गुले-अक्स की तर्फ़ बुलबुल चली।
चली थी न दम भर कि ठोकर लगी॥
जिसे फूल समझी थी साया ही था।
यह झपटी तो तड़ शीशा सर पर लगा॥
जो दहिने को झाँका वहीं गुल खिला।
जो बायें को दौड़ी यही हाल था॥
मुक़ाबिल उड़ी मुँह की खाई वहाँ।
जो नीचे गिरी चोट आई वहाँ॥
क़फ़स के था हर सिम्त शीशा लगा।
खिला फूल था वस्त में वाह वा॥
उठा शिर को जिस आन पीछे मुड़ी।
तो खंदाँ था गुल आँख उससे लड़ी॥
झपकने लगी अब भी धोका न हो।
है सचमुच का गुल तो फ़क़त नाम को॥

चली आखिरश फरके दिल को दिलोर ।
मिला गुल, लगी इक न दम भर की देर ॥
मिला गुल, हुई मस्तो-दिलशाद थी ।
क़फ़स था न शीशे यह आज़ाद थी ॥
यही हाल इन्सान ! तेरा हुआ ।
क़फ़स में है दुनिया के घेरा हुआ ॥
भटकता है जिसके लिये दर बदर ।
वह आराम है क़ल्ब में जलवागर ॥

—:※:—

तू आहूये-खुतनी मुश्क जोई अज़ सहरा ।
ज़ि नाफ़े-ख्वेश नदारी खबर, खता ईंजास्त ॥
तात्पर्य—हे मृग तेरी सुगंध से भयो यह वन भरपूर ।
कस्तूरी तो निकट है क्यों धावत है दूर ॥
ढँढोरा शहर में लड़का बग़ल में ।
खुदा इस पास यह ढूँढे जंगल में ॥
भुल्ली हीर फिरे विच वेले ।
राँझा यार बुकल विच खेले ॥
देखता था मैं जिसे होके नदीदा हर सू ।
मेरी आँखों में छुपा था मुझे मालूम न था ॥

वाह राम ! आनंद तो क्या बताने लगे थे, खूब आग लगाई ।

राम—हाँ, यह आनंद कभी नहीं मिलने का, जब तक इस वाह्य परिवार, सम्पत्ति, अहं-मम को एक प्रकार अग्नि के समर्पण न कर दिया जाय, "घर जाल तमाशा डिट्ठा" । पुत्र अग्नि में भस्म हो जाय; स्त्री, माँ, अपना शरीर और

सब पिछ-लगे उड़ जायँ, राम ही राम दृष्टि-गोचर हो। जैसे पठित मनुष्य के लिये लिखा हुआ ॐ (प्रणव) अक्षर झट अपने अर्थों को स्पष्ट कर देता है, वैसे ही समस्त वस्तुएँ हायरोग्लिफ़ (चित्रमय शब्द) के अनुसार दृष्टि पड़ते ही राम के दरस दिखाएँ, तब आनंद होता है।

अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोकाऽलोकाः देवा अदेवाः वेदा अवेदाः। (बृ० उ० अ०४ ब्रा० ३ मं०२२)

तात्पर्य—ऐसी दशा में आत्मा समस्त बंधनों रहित हुआ अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिर होता है, अर्थात् जागृति में जो पिता के संबंध से नामज़द था, उस आनंद अवस्था में वह पिता पिता नहीं रहता, माता माता नहीं रहती, संसार संसार के रूप में नहीं रहता, देवता देवता नहीं रहता, ऐसे ही वेद वेद नहीं रहते; तात्पर्य यह कि जब पुरुष समस्त संबंधों और बंधनों से रहित होता है, तब आनंद का सागर उसके भीतर उमँड आता है, अर्थात् तब उसे अपने स्वरूप का अनुभव होता है, इससे पहले कभी नहीं।

सूली ऊपर प्यारे की सेज।

दुर्रेस्त ख़ुश, कफ़े बुल-हवस रा न दिहंद।
परवाना रास्त शमा, मगस रा न दिहंद॥

अर्थ—मोती अच्छी वस्तु है, उसको लोभी की हथेली में नहीं देते; पतंग के लिये दीपक है, मक्खी को नहीं देते।

पस अज़ मुर्दन बनाए जायँगे सागर मिरी गिल के।
लबे-जानाँ के बोसे ख़ूब लेंगे ख़ाक में मिल के॥

विषयों में जो आनंद मिला, क्या वह स्त्री के रक्त-मांस हाड़ चाम में आलथी-पालथी लगाए हुए बैठा था? हर हर हर! बिलकुल नहीं, वह तो केवल चित्त-वृत्ति के निरोध में था, एकाग्रता में था।

यद् यत् सुखं भवेत तत् तद् ब्रह्मैव प्रतिबिंबनात् ।
वृत्तिष्वंतर्मुखा स्वस्य निर्विघ्नं प्रतिबिंबनम् ॥

तात्पर्य—जब जब संसारी सुख मिलता है, उस समय अंतःकरण में ब्रह्मस्वरूप प्रतिबिंबित हुआ होता है, अर्थात् अंतःकरण में बिना अपने स्वरूप के प्रतिबिंबित हुए आनंद कदापि अनुभव नहीं होता। और यह प्रतिबिंब अंतःकरण में उस समय पड़ता है,जब चित्त वृत्तियाँ अंतर्मुख (निरोध) होती हैं और मन अचंचल होता है।

इधर क्षणभर के लिये अहं मम भाव मिटा, भय और चिन्ता से मुक्ति मिली, नाम रूप भेद लुप्त हुआ; उधर आनंद ही आनंद तरङ्गायित था। इधर भ्रांति का बादल उठा, उधर आनंदरूपी चन्द्र ने मुँह दिखाया। यह चंद्र (आनंद) तेरा आत्मा है। द्वैत की लटों को मुख पर से उठा, और शोकरात्रि को पर्वदिन बना।

तो खुद हिजाबे-खुदी ऐ दिल ! अज़ मियाँ बर ख़ेज़।

अर्थात्—ऐ दिल ! द्वैत-आवरण तू आप स्वयं है, अपने भीतर से तू उठ जाग।

बर चेहरए-तो नक़ाब ता के। बर चश्मए-खुर सहाब ता के॥

अर्थात् तेरे मुखमंडल पर आवरण कब तक ? सूर्य के स्रोत पर बादल कब तक ?

घुंड कढके क्यों चन मुँह उत्ते, ओईले रहयों खलो, फ़क़ीरा ! आपे अल्लाह हो।

स्वयं आँखें मीचकर अविद्या (दुःख) रूपी अंधकार उत्पन्न किया है। ऐ सूर्य ! आँखें खोल। उजाला ही उजाला हो जायगा। सब वस्तुओं को प्रकाशित (आनंदमय) बनाने वाला तू है।

आफ़तावो आफ़तावो आफ़ताव।
ज़र्रहा दारंद अज़ तो रंगो-ताद॥

अर्थात्—ऐ प्यारे! तू सूर्य है, तू सूर्य है, तू सूर्य है; और ये समस्त कण (सृष्टि) तुझसे ही चमक दमक पाते हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चंद्र तारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः। तमेव भांतमनुभाति सर्व्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति। (कठ उ० अ०१ व०५ मं०१५)

तात्पर्य—न वहां (वास्तविक स्वरूप में) सूर्य चमकता है, न चंद्रमा और न यह बिजलियां ही पर मार सकती हैं। अग्नि की ज्वाला तो फिर कहां? वरन् सत्य तो यह है कि उस प्रकाशों के प्रकाश स्वरूप के तेज़ से यह सब जगत् प्रकाशित है, और उसके तेज़ से ही यह सब नाम और रूप तेजोमय हो रहे हैं?

च—चानना कुल्ल जहान दा तूँ।
तेरे आश्रय होय व्यवहार सारा॥
होवे सर्वकी आँख में देखदाहैं।
तुझे सूझदा चानना अंध्यारा॥
नित जागना सोवना ख़्वाब तीनों।
देख तेरे आगे होवे कई वारा॥
बुल्हाशाह प्रकाश स्वरूप तेरा।
घट, वद्ध न होत है एकसारा॥

प्रश्न—बच्चा हर समय क्यों आनंदित रहता है, मस्त फिरता है?

उत्तर—उसमें "मैं शरीर या बुद्धि हूँ" इस भ्रम ने घर नहीं किया होता, द्वैत की रात्रि उसके लिये अभी नहीं पड़ी।

"The baby new to earth and sky
What time his tender palm is prest
Against the cirle of his breast
Has never thought that this is I"
(Tennyson).

अर्थ—जो बच्चा अभी संसार में प्रकट ही हुआ है, जब उसकी कोमल कोमल हथेली को उसकी छाती से लगाया जाता है, तो उसे विचार नहीं होता कि "यह मैं हूँ"।

प्रश्न—संसारी मनुष्य की प्रसन्नता जो इन्द्रियों के विलास से प्राप्त होती है, जुगनू की दुम की तरह चमकते ही मात क्यों पड़ जाती है?

उत्तर—इन विषय-सुखों से द्वैत (देहाध्यास) केवल दमभर के लिये ही दूर होती है, अथवा यों कहो कि द्वैत की अँधेरी रात में केवल एक क्षण भर ही के लिये आत्मदेव (आनंद) की बिजली चमक जाती है।

अविद्या रूपी रात्रि (दुख) को सदैव के लिये नाश करना चाहते हो तो "जानो अपने आपको" Know thyself.

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदांत दर्शन प्रथम सूत्र)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
दर बरे-खुद बीं कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

अर्थ—जुस्तजू कर, जुस्तजू कर, जुस्तजू कर (अर्थात् अत्यंत अधिक खोज कर), अपने भीतर देख क्योंकि वह (प्यारा) बाहर नहीं है।

इतने पृष्ठ काले हुए। उपदेश क्या मिला? यह कि जितनी बाहर की वस्तुएँ आनंदप्रद और हर्षदायक हैं, केवल इसलिये हैं कि आनंद की खानि जो अपना आप है, उस (हिरण्यगर्भ) से तनिक सा सोना लेकर गिलट

की गई हैं। जब यह गिलट उतर जाता है, तो मानो कलई खुली और वस्तुएँ फीकी बनीं। "हर कसे रा पिसरे-खुद बजमाल नुमायद व अक़्ले-खुद बकमाल"–प्रत्येक को अपना सुत सुंदर और अपनी बुद्धि पूर्ण प्रतीत होती है। बच्चा माँ की गोद में तोतली बोली से जब कहता है—"मेरी माँ, म्हारी माँ" तो उसमें 'मेरी' और 'म्हारी' है गोल्डन टच (Golden touch) प्यारा बना देनेवाला मंत्र। जब बड़े भाईसे एक अदा (नखरे) से कहता है "मेरी है—म्हारी है", और वह बोलता है—"नहीं मेरी है", तो इतनी शकरञ्जी होती है कि नन्हें से ओंठ निकाल कर विसूरने लगता है। यह देखा और माँ ने झट चूमकर कहा—"मेरी कहनेवाले पर वारी"। वाह "मेरी" भी तो क्या जादू है! फिर ज्यों ज्यों देखता है कि इस माँ में औरों का भी भाग है, तो उसके संबंध का नाता कमज़ोर होता जाता है, और पहला सा प्रेम नहीं रहता। जितना इसमें 'मेर' कम हुआ, उतनाही प्रेम दूर हुआ। किसी और स्त्री ने गोद ले लिया हो, तो कभी असली माँ याद ही नहीं आती। ऐ सर्वोत्तम मनुष्य! संसार की समस्त वस्तुएँ तेरे सामने नाच नाचती वा मुजरा-तमाशा दिखलाती हैं, जिसपर तेरी कृपा-दृष्टि होती है, उसे तू मान प्रदान करता है। 'मेरी' 'हमारी' 'अपनी', इस अलंकार से सजाता है। यह मेरी वह उपाधि है, वह मान-वस्त्र है, कि जिस वस्तु को मिली, वह आनंदरूप बनी।

गुलिस्तां में जाकर हर इक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है॥

गार्गन (Gargan) की आँख जिसपर पड़ती थी, पत्थर बना देती थी, मगर यह "मेरा" कहनेवाली आँख जिस वस्तु पर पड़ी वह आनंद से भरी—

कुरवाने-निगाहे-तो शवम बाज़ निगाहे।

तात्पर्य—तेरी दृष्टि पर मैं न्योछावर हूँ। पुनः २ अपनी दृष्टि कीजिये।

एक व्यक्ति सैर करके वापस घर आया तो कंधे पर भारी मूल्यवान् दोशाले से अपना दो डेढ़ रुपया का बूट (जूता) पोछने लगा। किसी ने इस लापरवाही का कारण पूछा तो मालूम हुआ कि दोशाला उसके बाप का है और बूट (जूता) उसका अपना। वाह, पहले आप पीछे बाप।

ऊषा और संध्या के समय पौ फटने की लाली के रंग वह चमक दमक रखते हैं और ऐसे चित्रविचित्र होते हैं कि कृत्रिम रंग उनके सौंदर्य को कहाँ पहुँचेंगे? किंतु ड्राइंगरूम के चित्रों के रंग अधिक चित्त-आकर्षक होते हैं। कारण?—यही कि इनपर 'मेरे' का इतलाक (प्रयोग) हो सकता है। कहाँ तो आकाश के तेजस्वी (शोभायमान) तारे, और कहाँ दुलहिन की तीन गज़ चुनरी के तारे; किंतु पाठक! सच कहना, जो रुचि इन उत्तर कथित तारों में है, वह है पूर्वकथित तारों में? नहीं, कदापि नहीं। कारण? बस यही कि चुनरी (चुँदरी) के तारे "मैं" और "मेरे" के हल्के (वृत) में हैं। ऐ "मैं" (आत्मा)! तेरी कारीगरी पर न्योछावर!

प्रश्न—"आं कि दिल रा मेरुबायद अज़ बरम पैदास्त कीस्त?" कौन मेरे दिल को चुरा रहा है? कौन?

उत्तर—"हुस्ने-तो अज़ रूए-जानाँ मुनअक़स शुद शोर चीस्त।" तू ही प्रेम पात्र बनकर यह चोरी कर रहा

है। ह्यू एंड क्राई (hue and cry=शोर, क्रंदन और कोलाहल) कैसी ?

चित्त चुराने में सबसे अधिक निपुण कौन होता है ? चतुर्दश वर्षीया चंद्रवदनी ? कदापि नहीं, वरन् वह जिसपर चित्त आजाय अर्थात् जिस पर "मैं" आ जाय।—

मेरा गिरया तेरे रुखसार को चमकाता है।
तेल इस आग पे तिल आँख का टपकाता है॥

क्या लैली के सौंदर्य पर मजनूँ का जी आया ? नहीं, मजनूँ के जी आने पर लैली का सौंदर्य बना। क्या अच्छा कहा है "लैली रा बचश्मे-मजनूँ बायद दीद" लैली को मजनूँ की आँख से देखना चाहिए। गोपियों का जी श्याम वर्ण पर आया तो श्याम ने वह सुंदर रूप पाया कि तारों को लजाया—

देख छवी सब तारे लाजैं। नैन चकोर मुख चंद को भाजैं॥

सोच कर बताओ ऐ मेरे प्राण ! अव्यक्त ईश्वर लोगों को क्यों इच्छित और अभीष्ट है ? किस लिये वह प्यारा है ? केवल अपने लिये। अन्न दाता है, मालिक है, दयामय है, करुणामय है, सृष्टि कर्त्ता (Maker) है, माता के उदर में उसने प्रतिपालन किया, शिशुपन में दूध दिया, और यह उसी की कृपा से है कि—

अब्रो-बादो-महो-खुरशीदो फ़लक दर कारंद।
ता तो नाने बकफ़ आरी व व ग़फ़लत न खुरी॥
हमा अज़ बहरे-तो सरगश्ता ओ फ़रमाँबरदार।
शरते-इन्साफ़ न बाशद कि तो फ़रमाँ न बरी॥

अर्थ—बादल, हवा, चंद्रमा, सूर्य और आकाश सब तेरे काम के लिये हैं जिसमें तू रोटी प्राप्त करे किंतु उसको

ग़फ़लत (प्रमाद) से न खाए। यह सब तेरे लिये चक्कर लगा रहे हैं और तेरे आज्ञाकारी हैं। अतः न्याय की यह शर्त नहीं कि तू (उस ईश्वर की) आज्ञा न माने।

अतः इसी तरह ईसाइयों के यहाँ एक गीत (Hymn) गाया करते हैं "उसने मेरे साथ पहले प्रेम किया (He first loved me), मैं क्यों उससे प्रेम न करूँ"। धन्यवाद के भजन और प्रार्थना (Thanks,) मनाजातें (स्तुतियें) जहाँ सुनीं, वहीं ईश्वर ने धीरे से कान में यह ध्वनि दी।—

जमाले-हमनिशीं दर मन असर कर्द।
वगरना मन हमाँ ख़ाकम कि हस्तम॥

अर्थ—सहवासी (आत्मा) के सौंदर्य ने मेरे पर प्रभाव डाला है (जिससे) कि मैं जीवित बना हूँ अन्यथा मैं जैसा कि हूँ, वही ख़ाक (धूलि) हूँ।

यह निजानन्द स्वरूप केवल मेरा अपना आप क्या है? शरीर है?—नहीं, शरीर तो और वस्तुओं की भाँति इस आनंदस्वरूप आत्मा की छाया को लेकर प्यारा बना है। यह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा आत्मा के ज़रा अधिक निकट रहता है, इसलिये औरों की अपेक्षा अधिक प्रिय है—

सगे-हुज़ूरी बेह अज़ बरादरे-दूरी।

पास बैठनेवाला कुत्ता दूर के भाई से भी अच्छा है।

जिज्ञासु—यदि आत्मा शरीर नहीं तो शरीर में कहाँ पर है?

ज्ञानी—जो प्रियतम है, वही आत्मा है;-आत्मा वह मिसरी और क़ंद है कि जिसको प्राप्त होकर शेष समस्त वस्तुएँ मधुर बनती हैं।

जिज्ञासु—क्या वह आत्मा पाँव है कि समस्त शरीर के भार को सहारता है ?

ज्ञानी—नहीं, पैर प्रियतम कहाँ।

जिज्ञासु—पग नहीं तो शरीर में और कोई अंग आत्मा होगा। लो हाथ सही।

ज्ञानी—हाथ भी नहीं हो सकता। हाथ से तो मस्तक बहुत अधिक प्रिय है। अस्पताल में इधर एक घायल हाथ कटने लगा है, रोगी विचारा विलबिलाता है; और उधर एक के मस्तक पर शस्त्र-क्रिया का कार्य हो रहा है। यह शरीब पहले रोगी से डाह करता है; हा दैव ! यदि मस्तक के स्थान पर मेरे हाथ पर फोड़ा होता, तो भला चेहरे पर धब्बा तो न लगता। ऐसे अवसर पर स्पष्ट होता है कि हाथ की अपेक्षा मस्तक अधिक प्रिय है, किंतु मस्तक प्रियतर कदाचित् नहीं। नेत्र या और कोई अंग उससे भी अधिक प्रिय होगा।

जिज्ञासु—तो फिर क्या आँख या कोई और अंग प्रियतर होने के कारण आत्मा है ?

ज्ञानी— नहीं, उस प्रियतर अंग से भी बढ़कर प्रिय कोई और वस्तु आप में है, सोचो ?

जिज्ञासु—हाँ हाँ, अब समझे, बुद्धि। बुद्धि अवश्य आत्मा होगी, समझ में भी आ सकता है।

ज्ञानी—नहीं नहीं, फिर सोचो। इससे भी अधिक प्रिय कोई और वस्तु तुम में है ?

जिज्ञासु—(सोचकर) प्राण (जान)। मलका एलिजवेथ जब मरने लगी तो चिल्लाई कि अब जितने मिनिट मुझे

कोई डाक्टर जीवित रक्खे, उतने लाख रुपया ले। इसी तरह मेरी समझ में चाहे कैसा ही बुद्धिमान्, विद्वान् और ज्ञानवान् पुरुष कोई क्यों न हो, उसे मरने के समय यदि यह मालूम हो कि आज़ाद और स्पेंसर(Spencer)की तरह बुद्धि न्यौछावर करने पर जीवन का नाता लंबा हो सकता है, तो प्राण के लिये बुद्धि से सर्वथा विछोह स्वीकार कर लेगा। अतः प्राण अर्थात् जान सबसे प्रिय है,यही आत्मा है।

ज्ञानी—नहीं नहीं, फिर ज़रा विचार करो।

जिज्ञासु—विचार आगे नहीं चलता; बुद्धि यहीं तक काम करती है।

ज्ञानी—क्या सच कहा। वस्तुतः इससे परे बुद्धि की दाल गलती ही नहीं। बुद्धि हार कर कह उठती है:—

अगर यक सरे-मूए बरतर परम।
फ़रोगे-तजल्ली बिसोज़द परम॥

अर्थ—यदि एक बाल के बराबर भी मैं इससे ऊपर को उड़ूँ, तो प्रकाश की अधिकता मेरे पर को जला दे।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे।
(साम वेद केनोपनिषद मं० ३)

भावार्थ—न वहाँ (सत्यस्वरूप) में दृष्टि ही जाती है, न वाणी, न श्रोत्र और न मन, अर्थात् इंद्रियों की पहुँच से वह स्वरूप अतीत है। न हम यह जानते हैं और न समझते हैं कि किस तरह से उस स्वरूप का उपदेश किया जाय, क्योंकि वह ज्ञात और अज्ञात से भी परे है; ऐसा पहले

उन तत्त्ववेताओं से सुना गया है जिन्हों ने हमारे लिये इसका व्याख्यान किया है।

जिज्ञासु—अतः प्राण (जान) ही प्रियतम है और यही मेरा आत्मा (अर्थात् अपना आप) है, क्योंकि आगे तो बुद्धि में कुछ आता ही नहीं।

ज्ञानी—कदापि नहीं। यद्यपि बुद्धि वहाँ तक काम न करे, कोई क्षति नहीं। आत्मा बुद्धि और प्राण दोनों से परे है। और माना कि आत्मा तत्त्व विचार, अनुमान धारण और संकल्प से परे है किंतु उसको अस्तित्व में कुछ भी वक्तव्य नहीं। वह सत्स्वरूप है।

जिज्ञासु—भला क्यों कर ?

ज्ञानी—लो सुनो। बहुत काल हुआ, एक विद्यार्थी को प्राण छोड़ते देखा। उसे पैरों की ओर से पीड़ा उठती थी। पहले तो पीड़ा की दौड़ केवल घुटनों तक थी, पिंड-लियाँ और पाँव अपने आप तलमलाते और झिटके खाते थे। धीरे-धीरे दर्द जंघाओं तक पहुँचा और शरीर का वहाँ तक का भाग अपने आप अधकटे मुर्गे की तरह तड़-पने लगा। पीड़ा आगे बढ़गई। अंततः पीड़ा हृदय तक पहुँची, दुःख से छुटकारा मिला। तत्काल ही लम्बी सांस के साथ उस नवयुवक की जिह्वा से ये शब्द सुनाई दिए—" अरे मेरे प्राण कब निकलेंगे ? मेरे प्राण कब निकलेंगे ? "

ओ प्यारे ! आत्मा वह प्रियतम वस्तु है जो कहता है " मेरे प्राण " अर्थात् प्राणों का स्वामी, जिससे छूत पाकर प्राण प्रिय बनते हैं, जिस आनंद स्वरूप पर प्राण न्योछावर कर देना स्वीकार होता है, वह प्राणों का प्राण आत्मा है।

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥
(सामवेद, केनोपनिषद, मं० ८)

भावार्थ—प्राणों कर जीवत नहीं, जो प्राणों के प्राण ।
सो परमात्मा देव तू, कर निश्चय नहीं आन ॥

यही आनंद का तुल्यार्थवाला (Synonymn) तेरा वास्तविक अपना आप आत्मा है जिस की स्तुति वेद यों गाता है—

आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशंतीति ॥
(यजु०. तैत्ति० उ० भृ० व० अ० ६)

भावार्थ—है लहर एक आलम बहरे-सुरूर में ।
है बूदोबाश सारी उसके ज़हूर में ॥
मिटती है लहर जिसदम वह ही तो बहर है ।
हर चार सू है शोला मत देख दूर में ॥

In him we live, move and have our being.

अर्थ—उस आत्मा में हम रहते-सहते, चलते-फिरते और आस्तित्व रखते हैं ।

खाँड का कुत्ता गधा चूहा बला ।
मुँह में डालो ज़ायक़ा है खाँड का ॥

खाँड का ऊँट असबाब के साथ डंडा के नीचे तोड़ा, क्या निकला ? खाँड । हाथी सहित राजा के तोड़ा, क्या मिला ? खाँड । रेल सहित साहब के तोड़ो, क्या मिला ? वही खाँड । क्या खाँड भी टूटी ? नहीं, वह तो ज्यों की त्यों खाँड की खाँड बनी रही । टूटा क्या ? केवल नाम-रूप । इसी तरह खाँड और हलाहल के, पवन, पावक और पृथिवी

के नाम रूप (Quatities) महावाक्य "तत्त्वमसि" के हथौड़े के नीचे चकनाचूर हुए, तो क्या मिला ?—एक आत्मा—

आप ही आप हूँ याँ ग़ैर का कुछ काम नहीं।
ज़ाते-मुतलक़ में मिरी शक्ल नहीं नाम नहीं॥

श्रीमती महारानी भारतेश्वरी (मलिका मुअज़्ज़मा) को देश, काल, वस्तु परिच्छेद के नीचे झाँका, तो अपने आप ही को पाया। देवी देवताओं के मुख से द्वैत रूपी देश, काल, वस्तु (Time, space and causality) का पर्दा दूर किया, तो मेरा शुद्ध आत्मा था। ख़ुदाए-पाक (परमेश्वर) के चेहरे पर का आवरण फाड़ा तो मेरा ही तेजोमय मुख निकला।

मनम ख़ुदा व ब बाँगे-बलंद मी गोयम।
हर आँकि नूर दिहद मिहरो-माह रा ओयम॥

अर्थ—उच्च स्वर से कहता हूँ कि मैं ख़ुदा हूँ, और जो तेजों का तेज स्वरूप आत्मा इस सूर्य और चंद्र को प्रकाश दान करता है, वह मैं हूँ।

वह जो इस एकता को साक्षात्कार (अनुभव) कर चुका है, अर्थात् वाणी में नहीं वरन् व्यवहार में ला चुका है, उसके विज्ञान और तत्त्वज्ञान के भण्डार में कोई ताज़ी ख़बर नहीं रही। धर्म अपने शासकाभिमानी और ज्येष्ठताभिमानी शिर (हाकिमाना और बुज़ुर्गाना सिर) को उसके सम्मुख झुकाता है। चूँ और चरा, क्यों और कब आदि को उसके दरबार में प्रवेश बल नहीं। कामना रूपी घुन का कीड़ा जो राजों और रंकों को एक समान बोदा और नष्ट करता चला जाता है, ऐसे चंदन रूपी ज्ञानवान के पास नहीं फटक सकता।

ऐ क़ौम बहज रफ़्ता कुजायेद, कुजायेद ।
माशूक़ हमीं जास्त बियायेद, बियायेद ॥
माशूक़े-तो हमसायाए-दीवार बदीवार ।
दर बादया सरगश्ता चरायेद चरायेद ॥

अर्थ—ऐ यात्रियो ! कहाँ जाते हो, कहाँ जाते हो ? प्यारा यहीं है। यहाँ आओ, यहाँ आओ। तुम्हारा प्यारा तो तुम्हारी दीवार से दीवार मिलाये हुए पड़ोसी बन रहा है (अर्थात् तुम्हारे अत्यंत निकट है) । ऐसी दशा में फिर तुम जंगल में व्याकुल क्यों फिर रहे हो ?

खेद है यदि हम अपने ही आत्मा को भूल कर कभी धूलि में, कभी रक्त मांस में, और कभी चलती हुई वायु की भाँति नाशवान् लोगों की प्रशंसा में आनंद की खोज की जाय । आप ही समस्त वस्तुओं को आनंदमय बनाना, और आप ही हवन्नक की तरह उनका पीछा करना ।

आप ही डाल साया को उसको पकड़ने जाय क्यों ?
साया जो दौड़ता चले कीजिए वाय वाय क्यों ?

ऐ मनुष्य ! आनंद यदि प्राप्त किया चाहता है तो अपने भीतर ढूँढ ।

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू ।
दर बरे-ख़ुद बीं हमीं जा हस्त ऊ ॥

अर्थ—खोज कर, खोज कर, खोज कर, (अर्थात् अत्यंत अधिक खोजकर) । पार्श्व में देख,वह प्यारा वहीं है ।

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा । (वेदांत दर्शन सू० १)

जिज्ञासु —फ़िक्रे-मुआश, ज़िकरे बुताँ, यादे-रफ़्तगाँ ।
दुनियाँ में आनकर भला क्या-क्या कोई करे ? ॥

तिसपर भी आप एक नया बोझ हमपर डाला चाहते हैं । पेट की आवश्यकताएँ (demands) बड़ी विकट हैं,

इसके धंधों से छुटकारा कहाँ ? पेट की चिंता हम न करें तो और करें क्या ? इस हेतु कि परमेश्वर की भी वही राशि (कन्या) है जो पेट की, हम परमेश्वर को भी अत्यंत नम्रता से प्रणाम करते हैं और झुक झुक कर दंडवत करते हैं; (वरन् दूर ही से दंडवत करते हैं) ।

ज्ञानी—क्यों प्यारे ! तुम्हारे भोजन को कौन शक्ति पाचन कराती है, क्या तुम्हारी चिंता वह शक्ति है ? तुम्हरी नस नाड़ी में कौन रक्त संचालन करता है ? क्या तुम्हारा यह प्रयत्न काम करता है ? तुम्हारे शरीर और बालों को कौन बढ़ाता है ? क्या तुम्हारे चिंता और परिश्रम का यह फल है ? तुम जब घूक निद्रा (सुपुप्ति) में अचेत पड़े पलंग पर आराम करते हो, तुम्हारे प्राणों की कौन रक्षा करता है ? भली भाँति स्मरण रक्खो, यही चेतन (शक्ति) राम है जो तुम्हारे लिये भोजन नित्य पहुँचाता है; इसी को आपके भरण पोषण की चिंता है । आपका शरीर और प्राण, आपके स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति सब का आधार वही है । उस गंवार का अनुकरण मत करो जो असबाब की भरी खुरजी घोड़े पर लाद और स्वयं स्वार हो कर कहीं जा रहा था और जिसने मार्ग में कुछ तो घोड़े पर करुणा करके और कुछ असबाब के मोह के कारण “ हाय मेरा असबाब, मेरा असबाब ” कहकर खुरजी सिर पर उठा ली, किंतु आप बराबर स्वार रहा । बोझ तो पहले की भाँति घोड़े पर ही रहा, किंतु गँवार ने अपनी गर्दन व्यर्थ में तोड़ ली ।

जिस्मो ख़यालो-मालो-ज़र सब का है बार राम पर ।
अस्प पै साथ बोझ धर सिर पर उसे उठाए क्यों ? ॥

हाय, हाय ! आनंदराशि परमात्मा से पेट की तुलना

करना! समस्त ग्रह और राशियां जिस परमात्मा के एक भ्रू-संकेत में सत् असत् होती हैं—

ज़ाले-जहाँ दानी सखुन इशवा-ए-नाज़ुकी मकुन।
दिल बतो नेस्त मुब्तिला तन तलमला तला तला॥

अर्थ— ऐ विश्व की बुढ़िया (अर्थात् ऐ दुनिया)! मेरी बात सुन और नखरे-टखरे मत कर। मेरा दिल तेरे साथ फँसा हुआ नहीं, तन तलमला, तला, तला (सारंगी का स्वर जिसके साथ यह पद मस्ती की दशा में गाया जाता है)।

वस्त्र शरीर के लिये होता है, शरीर वस्त्र के लिये नहीं। उस व्यक्ति की दशा दया के योग्य है जो सारा समय कपड़ों के बनाव शृंगार में खर्च कर दे, पर बीमार शरीर की ज़रा खबर न ले। अधिक दया के योग्य उस व्यक्ति की अवस्था है जो समस्त आयु को शरीर अर्थात् पेट के धंधों में बिता दे और आत्मा को (जिसके समक्ष शरीर वस्त्र की हैसियत भी नहीं रख सकता) नष्ट हो जाने दे। प्यारे! इस मनुष्य-देह-रूपी सीप से मोती निकाल ले; फिर यह सीप चाहे टूटे, चाहे रहे, कुछ ही हो, बला से। यह मोती (आत्मज्ञान) जब मौखिक वाग्विलास से उन्नति करके अंतःकरण में घर करता है, रोम-रोम में रच जाता है, नस नाड़ियों में प्रवेश पा जाता है, तो निम्न-लिखित अनुभवावस्था का समर्थन करता है कि इधर स्वाराज्य को संभाला, अर्थात् ईश्वरीय राज्य (Kingdom of Heaven ब्रह्मलोकमें) पग रक्खा, अथवा सत्सिंहासन पर चरण टिका उधर प्रताप चाकर हुआ, देवते आज्ञाकारी बने, और कोई ज़रूरत न रहने पाई जो अपने आप पूरी न होगई। वह पूर्ण ज्ञानी जो इस झूठ व असत्य को शून्य कर चुका है

कि "मैं शरीर या शारीरिक हूँ;" और सदा अपने स्वरूप के तज (Glory) में दीप्तवान है, अपनी महिमा में मस्त पड़ा है, कुन (आज्ञा) कहने नहीं पाता कि फ़याकुर्न (आज्ञा पूर्ति) हो आता है। उसी की दृष्टि सृष्टि बनती है, उसी की दृष्टि प्रत्यक्ष होती है। यह अलभ्य पदारथ ऐ पाठक! आपके भी निजी भाग में है, प्रत्येक के दाय (अधिकार) में है। किंतु सुना होगा कि (Esaw sold his birth-right for a mess of pottage) हज़रत याक़ूब के बड़े भाई ईसा ने बादशाह और नबूवत जो उसका जन्म जात स्वत्व (birth right) था, शोरबे की एक रकाबी के बदले में खो दिया। शोक! महा शोक! कि उसका अनुकरण करके रोटी के बदले दोनों लोक में अपने लिये काँटे बोए जाएँ। ऐ प्यारे! शारीरिक इच्छाओं के कुसंग को त्याग दे, और अपने स्वरूप को पहचान (know thyself)।

रोगी पलँग पर एक कमरे में लेटा हुआ है। आओ, ज़रा उसकी बीमारी का हाल पूछते जाओ। दो मनुष्य सरहाने की ओर खड़े हैं, दो पैरों की ओर, दो तीन और इधर उधर सेवा में उपस्थित हैं। आप ,जैसे प्रतापवान् पधारे। कार्ड भेजा, उत्तर मिला, भीतर जाना नहीं मिलेगा, अधिक बीमार हैं। खैर, आग्रह करने पर आप भीतर गए। सारा शरीर उठाकर अभिवादन करना तो दूर रहा, रोगी ने आँख उठाकर भी तो न देखा। दो तीन बेर आपने अपने आने की खबर कान में पहुँचाई (राम राम किया), तो बड़े नखरे से नाक चढ़ाकर कहते हैं " एँ " , अस्तु। गद्दैले चारों ओर बिछे हैं, तकिये धरे हैं, लोगबाग राम-राम करने बराबर आ रहे हैं,इत्यादि। रोग भी तो अमीरी है। पर प्यारे! रोग सहेड़कर यह बाह्य प्रताप लिया गया

है। धिक्कार है इस सांसारिक इच्छा (विषम-रोग) पर जो वाह्य प्रताप की इच्छुक होती है, किंतु आत्मा को नष्ट भ्रष्ट कर देती है।

तनिक देखना, यह आनंद के बाजे कैसे बज रहे हैं? और गीत गाती, हर्ष मनाती ये स्त्रियाँ किधर जा रही हैं? ये शीतला की पूजा को चली हैं। एक बच्चे को चेचक (शीतला) निकली थी, अब रोग से कुछ निवृत्ति हुई है। स्वास्थ्य पाने का धन्यवाद अर्पण कर रही हैं। जिस इमारत की बाहरी शोभा और श्रेष्ठता को देखकर राजकीय कोष की भ्रांति हुई थी, वह तो कीड़ों और चूर्ण चूर्ण अस्थियों का पुञ्ज (अर्थात् मक़बरा) निकली। प्रियवर! उनका अनुकरण मत करो जो पहले संकल्प (desire, हवस) रूपी बसंत रोग में फँस जाते हैं और फिर जब तनिक शिर उठाते हैं, तो शरीर में फूले नहीं समाते और भाँति-भाँति के भोग-विलास के सामानों से केवल यह जतलाते हैं कि हम चेचक के (victim) शिकार (भोज्य) थे। (A goodly apple rotten at the core) वे उस सुंदर सेब के समान हैं जो भीतर से सड़ा हुआ हो। अहो भाग्य उस व्यक्ति के जो इस रोग (इच्छा) का आखेट (शिकार) ही नहीं बना, जिसने न तो कीचड़ से अपना शरीर मलिन किया, और जो न फिर धोता फिरा—

कीच पीछलो धोयकर, आगे को न लगाओ।
चंदन आत्मज्ञान तज विषय बीच मत जाओ॥

संसार में जब किसी की एक कामना मिटती है (जैसे परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना या विवाह होना), तो उसके सिर से कैसा बोझ हल्का हो जाता है, और उसे कितना आनंद प्राप्त होता है। अब उस विद्वान् के आनंद का क्या पूछना

है जिसके हृदय में किसी कामना को अवस्थान नहीं रह गया, जिसके समस्त भार टलगए, एक इच्छा शेष नहीं रही, समस्त संकल्प नाश हो गए। अपने आपको जानने में जिसके सब कर्तव्य पूर्ण होगए—

आपूर्यमाणामचलं प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी॥
(गीता अ० ६ श्लो० ७०)

अर्थ—जिस सज्जन ने अपनी इच्छाओं को यों समेट लिया है जैसे जल से भरपूर समुद्र नदियों को अपने बीच में प्रविष्ट कर लेता है, वही सज्जन शान्ति प्राप्त करता है, दूसरा नहीं।

शाहंशाहे-जहान है, सायल हुआ है तू।
पैदा कुने-ज़मान है, डायल हुआ है तू॥
सौ बार ग़रज़ होवे तो धो धो पिए क़दम।
क्यों चर्खो-मिहरो-माह पै मायल हुआ है तू?॥
खंजर की क्या मजाल कि इक ज़ख़्म कर सके।
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू॥
क्या हर गदा-ओ-शाह का राज़िक है कोई और?।
इफ़्लासो-तंगदस्ती का क़ायल हुआ है तू?॥
टाइम है तेरे मुजरे के मौके की ताक में।
क्यों डरसे उसके मुफ़्त में ज़ायल हुआ है तू?॥
हमवस्ल तुझसे रहता है हर आन राम तो।
बन पर्दा अपनी वस्ल में हायल हुआ है तू॥

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदांत दर्शन सूत्र १)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
अन्दरूनत वीं हमाँ जा हस्त ऊ॥

जिक्रे-मुर्दा—(प्रिया-वर्णन या मृतक स्मरण)—आनंद हो, ऐ नाज़ और अदा पर मरनेवालो ! ऐ रोष और कटाक्ष पर कटनेवालो ! वह चंद्रवदन जिसकी भूलसे पड़ी दृष्टि द्वारा एक रश्मि पाकर सूर्य और चंद्र प्रकाशमान हैं; फूलों के वर्ण और गंध जिसकी शक्ति से, रमणियों की मुस्कराहट जिसकी कृपा से हैं; वह प्रकाशों का प्रकाश, शोभा की शान, और सौंदर्य का प्राण तुम्हारा ही आत्मदेव है ।

या हमा हुस्नो-खूबेम, आशिक़े-रूए कीस्तम ।
रस्ता ज़दामे-जिस्मो-जां बस्ता-ए-मूए कीस्तम ॥
मस्त ज़ बूए-मन जहाँ, दरपए निगहतम रवाँ ।
वाल्हा व मस्त दरपए निगहतो-बूए कीस्तम ॥

अर्थ—मैं स्वयं समस्त सौंदर्य और शोभा से सज्जित हूँ, फिर मैं किसके रूप का प्रेमी बनूँ ? (अर्थात् किसी का भी नहीं) । मैं शरीर और प्राण के बंधन से स्वतंत्र हूँ, फिर किसके केशपाश का मैं बंदी होवूं ? (अर्थात् किसी का भी नहीं) । मेरी सुगंध से संसार मस्त होकर मेरी सुगंध का पीछा कररहा है । मैं किसकी सुगंध का मस्ताना और आसक्त बनूं ? (अर्थात् किसी की सुगंध का भी नहीं) ।

सितमस्त गर हवसत कशद कि बसैरे-सर्वो-समन दरआ ।
तोज़ गुंचा कम नदमीदाई दरे-दिल कुशा व चमन दरआ ॥
एए नाफ़हाए-रमीदा बू मपसंद ज़हमते-जुस्तजू ।
व ख़याले-हल्क़ए-जुल्फे ऊ, गिरहे-,खुरद व ,खुतन दरआ ॥

अर्थ—यदि तुझे सरो चमेली की सैर का लोभ खींचे, तो सितम है; क्योंकि तू कली से कम खिलनेवाला नहीं; केवल हृदय का द्वार खोल और अपनी वाटिका की सैर कर । ऐ सुगंधित नाभियों (मृगनाभि=सांसारिक भोगों)

के पीछे पड़े हुए प्यारे ! उनके ढूँढने के कष्ट को मत सहन कर; उस प्यारे (परमात्मा देव) की लटों (केशों) के कुंडल के ख़याल की गिरह लगा और ऐसे तू खुतन में आ।

यह Gospal (शुभ-संवाद) तुम्हें वेद सुनाता है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णोदंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः॥ ३
नीलः पतंगो हरितो लोहिताक्षस्तडिद् गर्भ ऋतवः समुद्रः।
अनादिमत्त्वंविभुत्वेनवर्त्तसेयतोजातानि भुवनानि विश्वा॥४॥
(यजु० श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० ४ मं० ३, ४)

अर्थ—स्त्री (प्रणयिनी) तुम ही हो; पुरुष, कुमार और कुमारी भी तुम ही हो; बूढे भी तुम ही हो और दण्डे के बल तुम ही चलते हो; और तुम ही उपाधि से उत्पन्न होते हो, और तुम ही सर्व ओर मुख वाले हो, और कृष्ण वर्ण के पक्षी तुम ही बने हो, फूल तुम हो और भौंरा तुम हो, आदि—

बाँकी अदाएँ देखो, चँद का सा मुखड़ा पेखो॥ टेक॥
बादल में, बहते जल में, वायू में मेरी लटकें।
तारों में, नायिका में, मोरों में मेरी मटकें॥
चलना ठुमक-ठुमककर, बालकका रूप धरकर।
घूँघट अवर उलटकर हँसना यह बिजली बनकर॥
शबनम गुल और सूरज, चाकर हैं तेरे पद के।
यह आन बान सजधज, ऐ राम! तेरे सदके॥

पस ओ प्रिया-वर्णन के ध्यान में निमग्न ? इसीलिये।

जुस्तजू कुन जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
अन्दरूनत वीं कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदांतदर्शन प्रथम सूत्र)

मृतकजनों का स्मरण—ओ प्रियजनों की मृत्यु पर रोनेचिल्लानेवाले! ओ इष्ट-मित्रों की मृत्यु पर विलाप करनेवाले! इस रोने-धोने से यदि छुटकारा पाने का तू इच्छुक है, तो आ। अपने भीतर (inner sanctuary) पवित्र अंतःकरण में निद्रा कर। अमृत रूप बन। अपने असली धाम (सच्चिदानन्द) में निवास कर, जहाँ मृत्यु को मानो अचानक मृत्यु आ जाती है। और फिर देख कि है श्रुति का वाक्य सत्य कि नहीं—

अतिमुच्य धीरा प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।
(सामवेद केनोपनिषद् मं० २)

अर्थ—धीर पुरुष विषयों से निरासक्त हुए इस संसार से मुँह मोड़कर ही अमृत होते हैं, अर्थात् विषयों के घुंगल से छुटकारा पाते ही तत्काल अपने अविनाशी स्वरूप से मिलाप (अभेदता) पा जाते हैं।

ग़मो-ग़ुस्सा-ओ-यासो-अंदोह हिरमाँ।
हवाए-मुसर्रत उड़ा ले गई है॥

पस इसीलिये निरर्थक कोलाहल और अन्धेरी कोठड़ी में दिन को रात और रात को दिन करने के स्थान पर श्रुतियों की मधुर ध्वनि के द्वारा—

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
दर बरे-खुद वाँ हमाँ जा हस्त ऊ॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदां० सू० १)

ऐ प्यारे! संसार (phenomenon) की वस्तुएँ वस्तुतः संतोष दायक नहीं हो सकतीं, हृदय की तृष्णा इनसे कभी नहीं बुझती।

Anthony sought happiness in love, Brutus in glory, caesar in dominion. The first found disgrace, the second disgust, the last ingratitude and each distruction. The things of the world being weighed in the balance are all found wanting. Self realisation alone will bring peace and happiness.

अर्थ—एन्थोनी ने प्रीति (प्रणय) में, ब्रूटस ने कीर्ति में, और सीज़र (रूम के शाह) ने शासन-सम्राज्य बढ़ाने में आनंद ढूंढा। परिणाम यह निकला कि पहिले वाले (एन्थोनी) को अपमान और अकीर्ति लाभ हुई, दूसरे (ब्रूटस) को घृणा मिली और तीसरे (सीज़र) को कृतघ्नता, एवं प्रत्येक बिना आनंद के ही नष्ट होगया अर्थात् मर गया। इस प्रकार इस असार संसार की सब वस्तुएं जब अनुभव के तराज़ू में रखकर खूब तोलीं तो सब की सब निकम्मी पाईं, अर्थात् जब सांसारिक पदार्थों का भली भांति अनुभव किया तो सब के सब निकम्मे निकले। केवल आत्मानुभव ही हृदय को आनंद देने वाला निकला।

अतः—फ़िकरे-मुआशो-ज़िकरे-बुताँ यादे-रफ़्तगाँ।
अपना ही तू फ़रेफ़्ता होवे तो सब मिटैं॥

अर्थ—जीविका की चिंता, प्रणयिनी सुंदरियों का श्रवणमनन, एवं लोगों का दुःखमय स्मरण, यदि तू अपने निज स्वरूप का ही प्रेमी होवे, तो सब मिट जायँ।

अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा। (वेदां० सू० १)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
दर दरे-खुद बीं कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

जिज्ञासु—यह बहुत कठिन है, अत्यंत सूक्ष्म है, हम किस प्रकार विजय कर सकेंगे।

ज्ञानी—माना कि अति सूक्ष्म है, अत्यंत कठिन है; किंतु याद रक्खो, इस बिना चैन भी कहीं नहीं मिलने का, यह औषधि महंगी ही सही, किंतु अद्वितीय है। भयंकर रोग की इसके अतिरिक्त और कोई चिकित्सा भी तो हो।

नान्यः पंथा विमुक्तये। अर्थात् आत्मानुभव के सिवाय और कोई मार्ग मुक्ति का नहीं है।

अतः जितना कठिन है, उतनी ही जिज्ञासा अधिक करो।

हुदी रा तेज़तर मेख़्वां चो मोहमिल रा गिरां बीनी।
नवारा तलख़तर मे ज़न चो शौक़े-नग़मा कमयाबी॥

अर्थ—जब तू ऊँट के भार को भारी देखे, तो हुदी (ऊँट को चलाने की आवाज़) को अधिक ज़ोर से बोल, और जब तू तान का शौक़ कम पावे, तो आवाज़ को ऊँचा (पंचम स्वर में) खींच।

अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा। (वेदांत दर्शन सू० १)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
दर बरे-ख़ुद बीं हमाँ जा हस्त ऊ॥

जिज्ञासु—मेरे कुछ मित्रों को एक बेर वेदांत का ख़ब्त हुआ था, उन्होंने तो कुछ दिन टक्करें मार कर अंत में इसका पीछा छोड़ दिया, उन्हें कुछ रस आया नहीं।

ज्ञानी—होगा, क्या आश्चर्य है! उस लोमड़ी (वन-विडाल) की बात तुमने कभी नहीं सुनी जो अपने साहस की न्यूनता को छिपाने के लिये अंगूरों के सम्बन्ध में यों कह उठी कि "अभी कच्चे हैं, कौन दाँत खट्टे करे"

साहस-हीनता को त्याग कर धीरता के साथ श्रवण मनन और निदिध्यासन की मंज़िलों को पार करो—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मंतव्यो निदिध्यासितव्यः ।

(यजु० बृह० अ० ४ ब्रा० ५ मं० ५)

अर्थ—निस्संदेह यह आत्मा देखने, सुनने, मनन करने और अनुभव करने के योग्य है ।

वेद की वाणी झूठी नहीं है कि तुम आनंदघन हो, चेतन घन हो, सत्घन हो । परीक्षा कर लो ।

शोक है उस बंदी (क़ैदी) पर जो कानों के बंधन के छल्ले को कर्ण-कुंडल मान बैठा हो और हाथ-पाँव की बेड़ियों को कंगन और पग भूषण ठान बैठा हो, गले की संगली को विश्वविद्यालय का पटा (University hoods) स्वीकार कर चुका हो । प्यारे ! उठो, जागो । सांसारिक इच्छाओं की ज़ंजीरें एक दम तोड़ डालो; अज्ञान की निद्रा को झाड़ डालो (shake off); देखो तो सही, तुम्हारा तो बन्धन भी तुम्हारी मुक्ति सिद्धि करता है । सूर्य में अँधेरा कैसा ?

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

(यजु० कठो० अ० १ व० ३ मं १४)

अर्थ—उठो, जागो, उत्तम ज्ञानियों के निकट जाओ, और उनसे अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो ।

मिनगर बाहरसू ऐ जाँ ! कि तो जान जाने-माई ।
मफ़रोश ख्वेश अरज़ाँ कि तो बस गिराँ बहाई ॥

अर्थ—ऐ प्राण-प्रिय ! तू हर ओर मत देख, क्योंकि तू हमारे प्राण का भी मूल तत्त्व है (अर्थात् प्राण का भी प्राण है) । और अपने आप को सस्ता मत बेच, क्योंकि तू बहुत मूल्यवान् है ।

बिस्तां ज़ देव खातिम कि तोई बजाँ सुलेमां।
बिश्कन सियाह अख़्तर कि तो आफ़तावे-राई॥
बगुसल ज़ बे असीलाँ मशनो शरीबे-ग़ोलाँ।
कि तो अज़ शरीफ़े-असिली कि तो अज़ बलंदे-जाई॥

अर्थ—देव (कामदेव) से तू अपनी अँगूठी ले ले, क्योंकि प्राणों की शपथ तू ही सुलेमान है। और उस तिमिरांधकार को दूर करदे, क्योंकि तू सूर्य का प्रकाश करने वाला है। नीचों से अपना संबंध तोड़ दे और छलियों (दुष्टों) की कलकल मत सुन, क्योंकि तू श्रेष्ठ कुल का है और तू ही उच्च पदवाला है।

इस Superistition (पक्षपात) को त्याग कि "मैं शरीर और शरीरत्व हूँ, और—

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
दर बरे-खुद बीं हमाँ जा हस्त ऊ॥
अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदांतदर्शन सू० १)

एक राजा ने दो निपुण चित्रकारों (रवी और कवी) की परीक्षा लेनी चाही। परीक्षा की सुविधा के लिये दोनों को आज्ञा हुई कि आमने-सामने की दीवारों पर अपनी-अपनी चित्रकारी की योग्यता दर्शावें।

आज्ञानुसार पर्दे तन गए कि एक दूसरे के काम को देखने न पाएँ। प्रति दिन दोनों आते थे और अपनी-अपनी दीवार पर काम करने के पश्चात् चले जाते थे। नियत अवधि बीतने पर राजा साहब अपने सभासदों के साथ देखने के लिये उस स्थान पर पधारे। पहिले रवी की दीवार पर से पर्दा उठाया गया। दर्शक लोग दंग रह गए।

अहह अहह करने लगे। मुक्त कंठ से बोल उठे । चीन के चित्र भला इससे बढ़कर क्या होंगे ?

तुरा दीदा व मानी रा शुनीदा ।
शुनीदा कै बुवद मानिंदे-दीदा ॥

अर्थ—मैंने तुझको तो देखा है और मानी का केवल नाम सुना है। भला सुना हुआ देखे हुए के तुल्य किस प्रकार हो सकता है ?

सब ओर से यह शब्द सुनाई पड़े कि "बस, हद होगई, रवी तो पूरे के पूरे अंक (full marks) लेगया। महाभारत की समस्त घटनाओं को नए सिरेसे सजीव कर दिखाया। चित्र बोलने ही चाहतेहैं। इससे बढ़कर तो ख्याल में नहीं आ सकता। रवी ही को पारितोषिक मिलना चाहिए। अब कुछ आवश्यकता नहीं कवी की कारीगरी देखने की । कमाल है, कमाल !" तृप्त (प्रसन्न) तो राजा साहब भी ऐसे हो गए थे कि जी नहीं चाहता था कि कवी की दीवार देखने का कष्ट स्वीकार करें, किंतु कवी ने स्वयं ही पर्दा उठा दिया। पर्दा उठने की देर थी कि बस कुछ न पूछिए। चारों ओर आश्चर्य से निस्तब्धता छा गई। राजा साहब और श्रीमंत लोग दांतो तले अँगुली दाबकर रहगए। कुछ पल तक तो श्वांस (सांस) भीतर का भीतर और बाहर का बाहर रहगया। जिधर देखो निम्न अधर (ओष्ठ) ऊपर के अधर से अलग। सब के सब विस्मित खड़े हैं।। आखिर हुआ क्या ? कवी ने सितम क्या करदिया ? ग़ज़ब क्या ढा दिया ! अजी यह सफ़ाई। ओहो हो हो ! दृष्टि फिसली जाती है। और देखो दीवार के भीतर दो-दो गज़ घुसकर चित्र बना आया। हाय ज़ालिम ! मार डाला।

क्या ही ठीक निकला यह वाक्य कि "जहाँ न पहुँचे रवी वहाँ पहुँचे कवी।"

पाठक! समझे कवी ने किस बात पर रवी को मात कर दिया था? दोनों दीवारों का अंतर केवल दो गज़ के लगभग था। नियत अवकाश के भीतर रवी तो अपनी दीवार के ऊपर रंग और रोगन चढ़ाता रहा; और कवी इतना समय अपनी दीवार को सफ़ाई देने में दत्तचित्त से लगा रहा, यहाँ तक कि उसने वह दीवार स्वच्छ बना दी। जो परिणाम हुआ, वह तो आप ने देख ही लिया। इस झलकती ढलकती दीवार के मुक़ाबले रवी की दीवार खुर-दरी और भद्दी जान पड़ती थी। इसके अतिरिक्त रवी की सब की सब मिहनत एक सफ़ाई की बदौलत कवी ने मुफ़्त खरीद ली और दृक्‌शास्त्र (optics) के प्रसिद्ध सिद्धांत के अनुसार जितना अंतर दीवारों के मध्य में था, उतने ही अंतर पर कवी की दीवार के भीतर चित्र दिखाई देते थे।

ऐ अपरा विद्याओं के विद्यार्थियो! हृदय-पटल पर रवी की भाँति बाहरी चित्रकारी कहाँ तक पढ़े करोगे? सतह ही सतह (पृथिवी तल) पर विविध भाँति के रूप कहाँ तक भरोगे? धसे हुए (Crammed) विविध वर्ण दिमाग़ (मस्तिष्क) में कब तक रंग जमाएँगे? और बिखरे हुए विचार ठूँस-ठूँस कर भरे हुए कब तक काम आएँगे? (Education) एजूकेशन (*e*, out; *duco*, to draw) के अर्थ हैं भीतर से बाहर निकालना, न कि बाहर से भीतर ठूँसना। एजूकेशन (शिक्षा) के मुख्य प्रयोजन को गड़बड़ करना कब तक? क्यों नहीं कवी की तरह उस पवित्रता

(Purity) और आत्मज्ञान दिलाने वाली विद्या की ओर चित्त देते, जिसकी विशेषता है —

हर दम अज़ नाखुन खराशम सीना ए-आफ़गार रा।
ता ज़ दिल बेरूं कुनम ग़ैरे-ख़यालेयार रा॥

अर्थ—मैं अपने घायल चित्त को हर दम नाखूनों से छीलता हूँ जिसमें यार (प्यारे) के ख़याल के अतिरिक्त प्रत्येक ख़याल को चित्त से बाहर निकाल दूं।

कहाँ तो तत्त्व दर्शाने वाली ब्रह्मविद्या और कहाँ रूपासक्त सांसारिक विद्याएं और कलाएं जो एक दिन भारतवर्ष में शूद्रों के लिये विशिष्ट थीं। आज हमारे नवयुवक इन (so called) नाम मात्र की विद्याओं और कलाओं की चाह में गिरकर अधोगति में परमगत और कुएं की तह में तारा हो रहे हैं। Dark room (अंधेरे कमरे) की विद्या Light (प्रकाश वा ज्ञान) मानी गई, तो आज भी आँखों (हृदय-नेत्रों) को अन्धा करेगी और कल भी।

जिस एक के जानने से समस्त न जानी हुई वस्तुएं जानी जाती हैं, न सुनी हुई सुनी जाती हैं, न देखी हुई देखी जाती हैं, जिससे रक्षित तख्ती (पराकाष्ठा) के सब चिह्न हृदय-दर्पण में उतर आते हैं, जिससे सब से बड़ा रहस्य और गुह्य भेद का साक्षात्कार हो जाता है; उस उपनिषद्विद्या (आत्म ज्ञान) रूपी सुरमे से क्यों नहीं हृदय के नेत्रों को प्रकाशित करते ?

येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातंविज्ञातमिति।

(साम० छाँ० प्र० ६ खं० १ मं० ३)

अर्थ, जिस (आत्मज्ञान) से न सुना हुआ सुना हुआ हो जाता है, अज्ञात ज्ञात हो जाता है, और न जाना हुआ जाना हुआ हो जाता है (ऐसे स्वरूप को पहचानो)।

आत्मानं वा विजानीयात् अन्यां वाचं विमुंचथ ।
Know this Atman, give up all other
vain words and hear no other.

अर्थ—उस आत्मा को जानो और सब व्यर्थ गप्पें छोड़ो; उस तत्वज्ञान के सिवा और कुछ मत सुनो ।

इल्म राओ-अक्ल राओ क़ालो-कील ।
जुम्ला रा अन्दाख़्तम् दर आबे-नील ॥
इस्म राओ जिस्म रा दर बाख़्तम् ।
ता कमाले-मारफ़त दर याफ़्तम ॥

अर्थ—विद्या और बुद्धि, चूँ और चरा (क्यों क्या) इन सबको मैंने नील नदी में फेंक दिया । और मैंने नाम और रूप को हार दिया, तब मुझको ज्ञान की परमावस्था प्राप्त हुई ।

इक नुक़ते विच गल्ल मुकदी है ॥
फड़ नुक़ता छोड़ हिसावाँ नूँ, कर दूर कुफर दियाँ बाबा नूँ ।
दे फूक हिसाब किताबा नूँ, कर साफ़ दिले दियां ख़्वाबा नूँ ।
इक-अलिफ़ पढ़ो छुटकारा है, इक-अलिफ़ पढ़ो छुटकारा है ।

जुस्तजू कुन-जुस्तजू कुन, जुस्तजू ।
दर बरे-ख़ुद बीं हमाँजा हस्तऊ ॥

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा । (वेदांत दर्शन सू० १)

एक व्यक्ति मंदिर में आकर धन्यवाद का प्रसाद बाँट रहा था और आनन्द मना रहा था । किसी ने इस असाधारण आनंद का कारण पूछा, तो उत्तर दिया कि "मैंने दो बारा जीवन प्राप्त किया है । भला बचा हूँ । चोरों के पंजे से छुटकारा पाया । मेरा घोड़ा तो चोर ले गए हैं, किंतु हज़ार धन्यवाद है कि मैं घोड़े पर सवार न था, नहीं तो

मैं भी चुराया जाता, मेरी जैसी बहुमूल्य वस्तु चोरी के माल में गिनी नहीं गई, इस बात का आनंद है।

पाठक हंसते होंगे कि विचित्र मूर्ख था। इतना न समझा कि यदि मैं घोड़े पर सवार होता, तो मेरा चुराया जाना तो एक तरफ़, घोड़ा भी क्यों चुराया जाता। किंतु हाय!

हर कसे नासिह बराए-दीगराँ।
नासहे-खुद याफ़्तम् कम दर जहाँ॥

अर्थ—पर—उपदेश—कुशल बहुतेरे।
निज आचरहिं ते नर जग थोरे॥

अपने-अपने गिरेबान में मुँह डालकर देखो, क्या हाल हो रहा है। सवार लुप्त है कि घोड़ा? वह स्वर्गोपम भारतवर्ष जिसके सघन वृक्षों के समूहों में या तो कोकिला का मधुर स्वर सुनाई देता था, या शांति बरसाती हुई वेदध्वनि; जिसकी मन्द स्पन्द पवन या तो पुष्पों की सुगन्ध को उठाए फिरती थी या पवित्र प्रणव (ओ३म्) की ध्वनि को; जिसके दर्पण की भाँति स्वच्छ निर्मल स्रोत और नदियाँ उन महापुरुषों के अंतःकरण से अधिक निर्मल न थीं जो वहाँ रमण करते थे; जिसके सरोवरों और तीर्थों पर इधर तो खिले हुए कमल शोभायमान थे, उधर तीर्थ रूपी ज्ञानवानों के तेज बरसाते मुखारविंद; जिसके नगरों में तोते और मैना तक ब्रह्म विचार करते सुनाई देते थे; आज उस ऋषियों वाले भारतवर्ष में इस सिरे से उस सिरे तक कितने मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो स्वरूप में आरूढ़ हों? कितने हस्तामलक दिखाई देंगे? जिससे पूछो, सवार नदारद (नहीं है), घोड़े ही का पता देगा, अर्थात् शरीर ही का नाम और चिह्न बताएगा। अमुक दफ़्तर में नौकर, यह वेतन, अमुक जाति, अमुक व्यक्ति का

पुत्र, अमुक निवासस्थान, यह आयु, मैं सुन्दर हूँ, मैं मर्द हूँ, मैं एम्० ए० हूँ, इत्यादि-इत्यादि। प्यारे! यह सब तो घोड़े (शरीर) का हुलिया है, किन्तु शरीर आप नहीं हो सकते। शरीर पर सवार, शरीर के स्वामी, आप कौन हैं, बताइए? चुप, निस्तब्ध, शब्द नहीं। Lost! Lost!! Lost!!! लुप्त! लुप्त!! लुप्त!!! क्या लुप्त? ह्यू ऐंड क्राई (hue & cry) कोलाहल, फैली। घोड़ा खोया गया है क्या?—नहीं, घोड़े अर्थात् शरीर का पता तो बराबर मिल रहा है, सवार (आत्मा) लुप्त है। आश्चर्य है, क्या तमाशा है!

आँचि मा करदेम बर खुद हेच नाबीना न कर्द।
दरमियाने-ख़ाना गुम करदेम साहब-ख़ाना रा॥

अर्थ—जो कुछ हमने अपने पर किया, वह किसी अंधे ने भी नहीं किया; क्योंकि घर के भीतर घर के मालिक को हमने गुम कर दिया है।

भारतवर्ष-निवासी! (Know thyself).
जान अपने आप को!—

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू।
दर दरूतन वाँ कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा। (वेदांत दर्शन सू० १)

हस्ती-ओ-इल्म हूँ, मस्ती हूँ, नहीं नाम मिरा।
ख़ुद परस्ती व ख़ुदाई है, यह बस काम मिरा॥
(अहंग्रह उपासना)

चश्मे-लैला हूँ, दिले-कैस व दस्ते-फ़रहाद।
बोसा देना हो तो दे ले, है लबे-जाम मिरा॥
गोशे-गुल हूँ, रुखे-युसुफ़, दमे-ईसा, सरे-सरमद।
तेरे सीने में बसू हूँ, है वही धाम मिरा॥

हल्के-मंसूर, तने-शाम्स व इल्मे-बल्मा।
वाह वा, बहर हूँ और बुदबुदा इक राम मिरा॥

जिज्ञासु—मेरे खयाल में तो पादरी लोग रेवरेंड सलेटर (Revd. slater) और डाक्टर क्रूज़ियर (Dr. Crozier) आदि जैसे तत्त्वज्ञानी सच ही कहते हैं कि वेदांत महा स्वार्थपरायण धर्म है, अव्वल नंबर की खुदगर्ज़ी सिखाता है—अपनी ही अच्छाई को बताता है।

ज्ञानी—संसार में कोई मनुष्य ही नहीं जो आनंद का इच्छुक न हो, सीधे या टेढ़े मार्ग से (directly or indirectly) सब आनंद के पीछे भटकते हैं।

सुखं भूयात् दुःखं मा भूयात्।

अर्थ—सुख हो, दुःख कदापि न हो।

अंतर केवल इतना है कि कुछ नासमझ हैं (ग) जो सर्व व्यापी अपने आप को भूल कर शरीर-भाव में निमग्न हैं। एक साढ़े तीन हाथ के टापू में क़ैद रहते हैं, शेष सब सृष्टि को अपने से बिलकुल पृथक और जुदा मान कर उनसे तनिक नेह (प्रेम) नहीं रखते और आनंद की खोज उन भौतिक पदार्थों में करते हैं जहाँ आनंद है नहीं। इस लिये कि प्रकृति (Nature) के विरुद्ध आचरण करते हैं, अतः पग-पग पर ठोकरें खाते हैं और मुसीबतें झेलते हैं। इनका नाम संसार में स्वार्थपरायण (Selfish) रक्खा गया है; इसके स्थान पर कि झूठे या मूर्ख रक्खा जाता। कुछ ऐसे हैं (ख) कि अपने अनुभव या औरों के अनुभव के कारण यह जान चुके हैं कि आनंद केवल एक शरीर का भला चाहने में हमें नहीं मिलेगा। क्रिया और प्रतिक्रिया के नियम (Law of action and reaction) के अनुसार

"कर भला होगा भला"। या यों कहो कि यह वह हैं जो प्रकृति-माता (Mother Nature) से चपत खाकर इतना सीख चुके हैं कि आनंद लेने के लिये- "I should love others as I love myself" अर्थात् मुझे औरों से ऐसा ही प्रेम करना चाहिए जैसा कि अपने आप से।" औरों का भला करने ही में मेरा कल्याण है। मगर इतना अभी नहीं समझे कि क्यों? मैशीन (यंत्र) की भांति काम तो कुछ अंश में ठीक ही कर देते हैं, किंतु भीतर ज्ञान नहीं है। कुछ ऐसे महाशय ख्याल में भी नहीं ला सकते वह हार्दिक स्वच्छता जिस से सिद्ध होता है—

" All are myself, why not love all as myself.

अर्थ—समस्त शरीर मैं स्वयं हूँ, या सब मेरा अपना आप हैं, तो फिर मैं क्यों न अपनी ही भाँति सबसे प्रीति करूँ? सब शरीर मेरे हैं। केवल एक शरीर को अपना मानना झूठ बोलना है, और ब्रह्मांड के राजराजेश्वर अपने नारायण रूप आत्मा को परिच्छिन्न और बद्ध मान कर कलंकित करना और आत्महत्या करना है, और बहुत भारे पाप का भागी होना है, इस लिये स्वार्थ परता क्यों?"

ख संख्यक मनुष्य स्वार्थी (आनंद की चाह वाले) वैसे ही हैं जैसे ग संख्यक-मनुष्य। हाँ अंतर यह है कि ख संख्या वाले अपने स्वार्थ को पूरा करने का ढंग भी कुछ जानते हैं और ग संख्या वाले इस शैली से बिलकुल अनजान हैं। उनका नाम संसार में रक्खा गया है विनीत वा सभ्य, सज्जन पुरुष, सदाचारी लोग। वाह वाह! धन्य हैं ऐसे लोग, धन्य हैं। इसके साथ साथ ये लोग सत्संग की बदौलत या लोगों में कीर्तिवान् होने की इच्छा

से या धर्म के कोड़े खाकर, या स्वयं प्रकृति से पाठ पढ़कर इतना किसी अंशमें अवश्य सीख चुके हैं कि गुणन क्योंकर करना चाहिए; ग॥ संख्या वाले मनुष्यों की तरह गुणा देने के स्थान पर घटना नहीं कर देते; परन्तु गुणा के नियम के सिद्धांत को तनिक-नहीं समझते।

समस्त संसार के सिद्धांतों को यथार्थ जानने वाला, सभ्यता रूप गुणा के सिद्धांत तो एक तर्फ, वरन विकास, लोगार्थिम (Logarithms घाताङ्क गणन) और क्वाटरनियन (Quaternions) की तह तक पहुँचा हुआ और प्रकृति का पति है वह व्यक्ति (क) जो जानता है 'सर्वत्र वही आत्मा (अपना आप) प्रकाशमान है।"

Every where the same Self is manifest

जहाँ तहाँ क्या फ़क़ीर क्या अमीर, क्या छोटा क्या बड़ा, क्या क़ैदी (बंदी) क्या राज मंत्री, सब एक-ही है—

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम्॥
(श्वे० श्व० उप० अ० ३ मं० १४)

अर्थात् सहस्रों शिर वाला, लाखों नेत्रों वाला, सहस्रों पैरों वाला वह पुरुष है। वह सब ओर से भूमि को व्याप्त कर दशों दिशाओं में स्थित है।

केवल वह व्यक्ति (क) है जो स्वार्थपरायण नहीं कहला सकता, क्योंकि उसमें न अहंकार रहता है न स्वार्थ। उस व्यक्ति को आनंद की चाह भला क्यों? वह तो स्वयं आनंद है। जिसकी चाह होती है, वह आप स्वयं है, इससे उसका नाम है स्वयंभू-खुद आ या खुदा।

मतलप-दीदारे-हक़ दीदारे-मा।
मंबए-गुफ्तारे-हक़-गुफ्तारे-मा॥

अर्थ—हमारा दर्शन परमात्म-दर्शन का सूचक है और हमारी बातचीत ईश्वरीय वाणी का स्रोत है।

जबकि एक स्थान की वायु सूर्य की गरमी खाकर पतली होकर ऊपर उड़ जाती है, तो उसका स्थान घेरने को अपने आप चारों ओर से वायु चल पड़ती है, उन्नति कर जाती है; इसी प्रकार ज्ञानवान् जो सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त हो चुका है और संसार में आवागमन से मुक्त हुआ अपना स्थान खाली कर गया है, चाहे किसी से बात करे चाहे न करे, क्या शूद्र, क्या वैश्य, क्या क्षत्री, क्या ब्राह्मण, सबका आत्म होकर सब को एक पग आगे बढ़ा देता है। यह एक तिलस्मात का रिफ़ार्मर (अद्भुत सुधारक) है, जिसकी विद्यमानता से देश का देश तत्काल से सुधर जाता है, उन्नति पाता है।

जित्थे बैठन संतजन, ओह थान् सोहन्दा।
आँकि पाकीज़ा दिलस्त अर बिनशीनेद ख़ामोश।
हमा अज़ सीरते-साफ़ीश नसीहत शुनवंद।

अर्थ—जो स्वच्छ चित्त और निर्मल अंतःकरण हैं, यदि वह चुप भी बैठ जायँ, तो सब उसके पवित्र स्वभाव से उपदेश सुनते हैं।

ऐसे महात्मा की तो बोलचाल, गति और दर्शन ही जीवित उपदेश हैं, जिनकी बदौलत—

धन्नभूमी धन्नदेशकाल हो, धन-धन लोचन करिहैं दरसजो।

Archimedes (हकीम अर्शमीदश गणिताचार्य) कहा करता था कि I shall move the world if I get a standpoint अर्थात् तुलादण्ड के सिद्धांत (Principle of the lever) के अनुसार यदि मुझे एक टेक वा आलम्बन (फलकम fulcrum) मिल जाय, तो मैं जो छोटा सा

मालूम होता हूँ, सारे संसार को हिलादूँ ।" वह आलम्बन (टेक) हकीम अर्शमीदश विचारे को न मिल सका। वेदांत बताता है, वह टेक क्या है ? वह तेरा ही अपना आप (आत्मा) है, जो स्वतः स्थित, सब का अधिष्ठान (आधार और आश्रय) और सत् है, जिसको साक्षात्कार करने से समस्त सृष्टि हिलाई जाती है। अतः अपना ही सुधार करने से संसार का सुधार होता है।

Physician heal thyself (ऐ वैद्य ! पहले तू अपनी चिकित्सा कर। जब तक तुम्हें चोर दिखाई पड़ता है, तुम्हारे भीतर चोर अवश्य होगा; जब तक और लोग ब्रह्म से भिन्न (अयोग्य, खराब, सुधारने-योग्य) दिखाई देते हैं, ऐ सुधार का बीड़ा उठाने वाले ! अपनी चिकित्सा कर, अपनी पतित अवस्था पर आठ-आठ आँसु रो; और यदि कोई रक्तबिंदु तेरे हृदय-तल में है तो उसे आँसु बनाकर आँख के रास्ते निकाल डाल, यहाँ तक कि तेरे हृदय की वाटिका सिंचित होते-होते एक दिन इस ध्यान (आनन्द) से प्रफुल्लित हो जाय कि—

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्र विस्तारितम् ।
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणया ऽशेषं मया कल्पितम् ॥

अर्थ—मैं और यह चिन्मात्र (तुच्छ) फैला हुआ समस्त संसार ब्रह्म ही है और यह सारे का सारा समस्त जगत् तीन गुणों वाली अविद्या के कारण मुझसे कल्पितहै।

ऐ योरुप-निवासियो ! तुम वेदांत को कहते हो स्वार्थी, जिस वेदांत का आदर्श (Ideal) है संन्यास, जिसमें बड़ाई का परिमाण (तराजू) है त्याग (Renunciation), बड़ा देखना हो तो यह नहीं पूछा जाता कि इसके पास

रुपया कितना है, वरन् यह कि इसकी चित्त-विशालता (उदारता) कितनी है।

महो रम्याशय्या विपुलमुपधानं भुजलता।
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलो ऽयमनिलः॥
स्फुरद्दीपश्चंद्रो विरति वनितासंगमुदितः।
सुखं शांतः शेते मुनिरतन भूमिर्नृप इव॥
(भर्तृहरि, वैराग्यशतक श्लो० ६४)

अर्थ--जिसके हाँ भूमि ही सुन्दर शय्या, भुजा ही सरहाना (तकिया), आकाश ही छत (मण्डप), अनुकूल वायु ही पँखा और प्रकाशमान चन्द्र ही दीपक है, और जो उक्त सामग्रियों से विरक्तता रूपी स्त्री के संग आनन्द मय व प्रसन्न है, ऐसा विरक्त मुनी बड़े २ ऐश्वर्यवान् राजाओं के समान सुख से शयन करता है।

खिश्त ज़ेरे-सरो बर तारक हफ़्त अख़्तर पाए।
दस्ते-कुदरत निगरो मन्सबे-साहबजाही॥

अर्थ--शिर के नीचे तो ईंट है और पैर सातों नक्षत्रों के ऊपर; तू इस रुतबे वाले की सामर्थ्य का अधिष्ठान और पद देख।

सात गाँठ कौपीन में साध न माने संग।
राम अमल माता फिरे गिने इन्द्र को रंक॥

जिस वेदांत की पवित्र चौखट पर पग रखने के लिये ही आवश्यक है "इहामुत्रफलभोगविरागः" (वेदांत सार) अर्थात् "न केवल स्वर्ग की अप्सराओंपर आँख न डालना, वरन् इन्द्र ब्रह्म आदिक के उत्तम ऐश्वर्यों पर लात मार देना", फिर क्या बिसात कि इस संसार की नाशमान, अस्थिर क्षणभंगुर वस्तुओं के लोभ में मारे-मारे फिरना और धूलि उड़ाना--

ग़ैर पर आँख न डाले कभी दीदा तेरा ।
सब से बेगाना है ऐ दोस्त शिनासाँ तेरा ॥

हाँ, एक हिसाब से वेदांत एक अव्वल दर्जे की स्वार्थपर (खुदगर्ज़) किया है। कुछ तत्त्वज्ञानियों का कथन है कि जब कोई सज्जन किसी विपत्तिग्रस्त पर कृपालु होकर उसपर कृपा करता है, तो वह निहोरा (अनुग्रह) उस व्यक्ति पर कुछ नहीं होता, वरन् अपने ही पर होता है। कारण यह, कि जैसे कुछ मनुष्यों के स्वभाव कोमल होते हैं, तो वह औरों के श्लेष्मा को शीघ्र स्वीकार करलेते हैं, निकट का मनुष्य जमाई (yawning) लेता है, उनको जमाई आ जाती है, अन्य रोगों से तत्काल ग्रसित होने का तो कहना ही क्या है; वैसे ही कोमल चित्तवाला मनुष्य अपने पड़ोसियों की विपत्ति को सांसर्गिक रोग (मर्ज़ मुतअद्दी) की भाँति झट अपनी ही अङ्गीकार करलेता है, और फिर उस अङ्गीकृत शोक-संताप को मिथ्या करने के लिये ग़रीब पड़ोसी पर कृपा और दया करता है। यह कृपा और दया अपने ही लिये होती है, अन्य के लिये तनिक भी नहीं। जिसे दया और कृपा माने बैठो हो, यह भी तो एक प्रकार की स्वार्थपरता ही है। परन्तु वेदांत की स्वार्थपरता इससे भी गई बीती है, परले पार जाती है। यहाँ तो ऐ वेदांत को कुदृष्टि से देखने वाले महाशय! ज्ञानवान् का "स्व" (अपना आप) इतना विस्तार पकड़ लेता है, इतना देश घेर लेता है, ऐसा विश्वाधिकार करता है कि प्रशंसा में वाणी की गति मंद और मन की कल्पना अस्पंद हो जाती है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
(य० तै० उ० २-४-१)

जहाँ से वाणी लौट आती है और जो मन के द्वारा भी अप्राप्य है।

जिस प्रकार आपको एक शरीर विशेष के संबंध में यह ख़याल है कि "यह मेरा है", ठीक उसी वेग के साथ ज्ञानवान् समस्त सृष्टि को "मेरा" कह सकता है।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।
(गी० ७-७)

अर्थ--मुझमें यह सब जगत् ऐसे ओतप्रोत है, जैसे माला के दाने सूत्र में।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्नेवानुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
(य० ई० उ० मं० ६)

अर्थ--जो सब पदार्थों को अपने आत्मामें और अपने आपको समस्त पदार्थों में देखता है, वह फिर किसी की चुग़ली नहीं करता, अर्थात् उसको सब अपना आप ही दिखाई देते हैं, इसलिये उससे सब के साथ ऐसी ही प्रीति उमड़ती है, जैसी कि उसको अपने आप के साथ।

एक अवस्था ज्ञानवान् पर यह आती है कि--

पत्ती को फूल की लगा सदमा नसीम का।
शबनम का क़तरा आँख में उसकी नज़र पड़ा॥

गुलाब की पंखड़ी पर तो कोमल पवन से ज़रा सी चोट आई किंतु हाय, यह अभेदता! कि ज्ञानवान् के नेत्र सजल होगए।

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैली की जो ली।
इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिए॥
with nature and the God of nature.

अर्थ—(वह ज्ञानवान्) प्रकृति और प्रकृति के स्वामी से अभेद हुआ होता है, या प्रकृति से अभेद और प्रकृति का स्वामी हुआ होता है।

इस ज्ञानवान् के अनुभव को गटे (goethe) ने यों लिखा है—

I tell you, what's man's supreme vocation
Before me was no world, 'tis my creation.
'Twas I who raised the sun from out the sea
The moon began her changeful course with me.

अर्थ—मनुष्य का जो सब से उत्तम व्यवहार है उसको खुल्लमखुल्ला मैं तुम्हें बतलाता हूँ। वह यह है कि संसार मुझ से पहले न था, और यह मेराही बनाया हुआ है, और यह मैं था जिसने सूर्य को सिंधु से उदय किया और जिसके कारण चंद्रमा ने अपना परिवर्त्तनशील भ्रमण मेरे साथ आरंभ किया।

हाय स्वार्थपरता !
बतलाऊँ अपने कुफ़ की गर रमज़ शेख़ को।
बे अख़्तियार कह उठे इसलाम कुछ नहीं॥

यहीं पर वेदांत कम अलम होता है, प्यारे डाक्टर क्रोज़ियर (Dr.Crozier) ! वेदांत की विचित्र अनीति व अन्याय और देखो—

इब्तिदाए-इश्क़ है रोता है क्या ?
आगे-आगे देखिए होता है क्या !

वह रसायनिक-दृष्टि ज्ञानवान् की जहाँ पड़ी, ईश्वर ही ईश्वर बना दिया, कोई नीचता रही न उच्चता, बुद्धिभ्रंश (दीवानगी) रही न बुद्धिचातुर (होशमन्दी)।

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥
(गी० ५-१८)

अर्थ--विद्वान् और विनयशील ब्राह्मण में; गाय, हाथी, कुत्ते, और चांडाल में पंडित (ज्ञानवान्) पुरुष समदर्शी होते हैं।

उस प्रकाश की आँधी के आगे घर-वार प्यादा और सवार सब उड़गए, सुहागा फिर गया, सब सफाई होगई। आगे क्या कहूँ ? आगे क्या कहूं ?

ज्ञान की आई आँधी रे यारो, ज्ञान की अई आँधी ।
सकल उड़ानी भरम की टाटी क्या रानी क्या बाँदी ॥

समस्त संसार ज्ञानाग्नि में जल गया।

वार, पार, यार; जित वल देखा नूर जमाल ।

परमहंस के सम्मुख स्त्री आखड़ी हुई; माँ माँ ! काली काली ! कहकर चरण पकड़ लिए। मजनूँ के सामने बाप खड़ा था--

मजनूँ गुफ्ता बिगो, पिदर कीस्त ? ।
ग़ैर अज़ लैली दिगर कसे चीस्त ? ॥

अर्थ--ऐ मजनूँ ! बता, तेरा पिता कौन है ? उसने कहा कि लैली के सिवा और कौन हो सकता है (अर्थात् लैली ही है)।

शिवली जुमे (शुक्रवार) की नमाज़ के लिये इमाम बनाया गया, तो वहाँ यह मधुर वाक्य उसने गाया--

मन खुदायम, मन खुदायम, मन खुदा ।
फ़ारग़म अज़ किब्रो-अज़ कीनो हवा ॥

अर्थ--मैं खुदा हूँ, मैं खुदा हूँ, मैं खुदा हूँ और लालच, द्वेष और अभिमान से मैं मुक्त हूँ।

यह सुनकर जुनेद ने शिकायत की—

आँचेः मन बा तो गुफ़्तअम व नहुफ़्त ।
तो अयानश हमी कुनी अज़हार ॥

अर्थ—जो कुछ मैं ने तुझको पोशीदगी (एकांत) में कहा, तू उसको खुल्लमखुल्ला प्रकट करता है ? ।

शिबली ने उत्तर दिया—

मन हमी गोयम व हमी शुनवम ।
नेस्त कस ग़ैरे-मन ब हर दो दयार ॥

अर्थ—मैं ही स्वयं कहता हूँ और मैं ही सुनता हूँ, मेरे सिवाय दोनों लोकों में कोई नहीं है ।

मैं तो नितांत एकांत में हूँ, अन्य कोई है ही नहीं, प्रकट करना कराना क्या अर्थ रखता है ।

तन्हास्तम, तन्हास्तम, दर बहरो बर यक्तास्तम ।
जुज़ मन न बाशद हेच शै मन जास्तम मन मास्तम ॥

अर्थ—मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ और जल थल में अद्वितीय हूँ; मेरे सिवाय कोई वस्तु आस्तित्व नहीं रखती, मैं स्वयं भूमि हूँ और मैं ही स्वयं जल हूँ ।

धन्य है विरक्तता ! जिसपर सहस्रों विश्वास बलिदान । धन्य है मस्ती ! जिस पर लाख न्यूटन और केल्विन न्योछावर ।

दर्द-मारा बे शुमा, दिरमाँ मुबादा बे शुमा ।
मर्ग बादा बे शुमा, जाने-मुबादा बे शुमा ॥
विश्नौ अज़ ईमाँ कि मी गोयद ब आवाज़े-बलंद ।
बा दो ज़ुल्फ़े-काफ़िरस्त कईमाँ मुबादा बे शुमा ॥

अर्थ—ऐ प्यारे ! तेरे बिना हमको पीड़ा हो, पर तेरे सिवाय इस पीड़ा की चिकित्सा न हो । बिना तेरे हमारी मृत्यु हो, पर बिना तेरे हमारे में जान मत हो । विश्वास से

सुन जो कुछ कवि उच्च स्वर से कहता है (अथवा जो कुछ कवि विश्वास के साथ उच्च स्वर से कहता है, उसे तू सुन) कि तेरी दो काफ़िर ज़ुल्फ़ों के साथ मेरा यह विश्वास विना तेरे मत हो।

ऐ सांसारिक दृष्टि ! ऐ हाड़ चाम देखने वाली दृष्टि।
मर क्यों न जाय तू कटारी पेट खाय के ?

सद शुक्र गोयम हर ज़माँ, हम चंग रा हम जाम रा।
कईं हर दो बुरदन्द अज़ मियाँ हम नंग रा हम नाम रा ॥ १ ॥
दिल तंगम अज़ फ़रज़ानगी दारम सरे-दीवानगी।
फ़ज़ ख़ुद दिहम बेगानगी, हम खास रा हम आम रा ॥ २ ॥
चूँ मुर्ग परंद अज़ क़फ़स, दीगर नयंदेशद ज़ि कस।
बीनद मुबारक पेशो-पस, हम दाना रा हम दाम रा ॥ ३ ॥
ऐ जाँ ! तो गर हिम्मत कुनी, दिल अज़ दो आलम बर कनी।
यक बारा अज़ हम बिशकनी, हम पुख़्ता रा हम ख़ाम रा ४॥

सिजदा गरदानम किरा ऐ जाहिदा।
ख़ुद ख़ुदायम ख़ुद ख़ुदायम ख़ुद ख़ुदा ॥

अर्थ—मैं चंग और प्याले को धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि इन दोनों ने लाज शरम को मेरे हृदय से बिलकुल उठा दिया ? ॥ १ ॥

मेरा चित्त इस बुद्धि से व्याकुल हो गया है, क्यों कि मेरे मस्तिष्क में उन्मत्तता और पागलपन समाया हुआ है, तथा विशेष और सामान्य को मैं अपने से अन्य समझता हूँ ॥ २ ॥

जब पक्षी जाल से उड़ जाता है, तो फिर वह किसी से नहीं डरता है, तब वह जाल और दाने को आगे पीछे मुबारक समझता है ॥ ३ ॥

ऐ ज्ञान ! यदि तू साहस करे तो मेरे चित्त को दोनों लोक से उठा देवे और एक वार करे पक्के को बिलकुल तोड़ डाले (अर्थात् अच्छी बुरी इच्छाओं वा फल को नाश करदे) ॥ ४ ॥

जब मैं स्वयं ही खुदा हूँ, मैं ही खुदा हूँ; तो ऐ कर्मकाण्डी (उपासक) ! बता, मैं सिजदा (नमस्कार) किसके आगे करूं ।

नोट—इसी उर्दू लेख के आगे दूसरा लेख रिसाला अलिफ (मासिक पत्र) में "जीवित कौन है" है और जिस को अंग्रेजी भाषा में स्वामी जी महाराज ने "आत्म विकास" (Expansion of self) नामी विषय पर व्याख्यान दिया है, उसका अनुवाद भाग १४ में आवेगा। स्थान कम होने से इस भाग में नहीं दिया जासका।

मन्त्री।



राम परिचय।

(स्वर्गवासी रायबहादुर बैजनाथ के लेख 'सच्चा साधु से उद्धृत) ।

एक सच्चे साधु की जीवन चरित्र

वर्त्तमान समयमें स्वामी राम तीर्थजी महाराज एम, ए, इस (लेख, 'सच्चे साधु')के बड़े उदाहरण हुएहैं। यह महात्मा गोस्वामि तुलसीदासजी के कुल में हुए। मुरारी वाला ज़िले गुजरांवालेमें कार्तिक शुक्लप्रतिपदा सम्वत् १९३०(सन् १८७३ ई०)को उनका जन्म हुआथा। उनके कुल में सदा से गुरु शिष्य परंपरा चली आई थी। घरसे कुछ अधिक रुपयेवाले नहीं थे, परंतु अपने पुरुषार्थ से पंजाब यूनीवर्सटी में एम. ए. की पदवी पाई, और फ़ोरमैन कालेज़ लाहौर में गणित विद्या के दो वर्ष तक अध्यक्ष रहे। उनका पाण्डित्य अंगरेज़ी में बड़ा प्रसिद्ध था और वह पंजाब यूनिवर्सिटी के गणित विद्या में बहुधा परीक्षक भी हुआ करते थे। उनके दो पुत्र व एक कन्या हुई। उनको १५०) महीना मिलता था। अवस्था केवल २६ वर्ष की थी और शरीर में किसी प्रकार का रोग भी नहीं था, वरन् बड़े बलवान् थे, स्त्री और पुत्र सब अनुकूल थे, सर्वत्र उनका मान होता था, और कोई सामग्री संसार से वैराग्य की न थी, तथापि केवल यह अनुभव करने को कि "उपनिषदों के महावाक्यों का साक्षात्कार कैसे हो सकता है और वेदान्त शास्त्र केवल पुस्तकों अथवा वाणी का विषय नहीं है किन्तु हर घड़ी अनुभव का विषय है–नौकरी, स्त्री, पुत्र, पिता, कुटुम्ब

आदिक सब को छोड़ कर सन्यास ग्रहण किया, और बिना तत्त्व साक्षात्कार किये न हटे। दिसम्बर १९०१ (१९५७) में स्वामि जी मथुरा आए। वहाँ व्याख्यान दिए और फिर आगरे, लखनऊ, फ़ैज़ाबादादि स्थानों में सोतों को जगाया, सहस्रों मनुष्यों को यह बतलाया कि सिवाय त्याग और ज्ञान के और कहीं सुख नहीं। उन्होंने कपिल, पातंजली, गौतम, कणाद, जैमिनि, व्यास शंकर आदि के सिद्धान्तोंके साथ साथ, शमसतबरेज़, मौलना रूम के सिद्धान्तों को फ़ारसी में और प्लेटो, कैण्ट, हेगल शूपनाहार हक्सले, स्पेंसर, कारलाइल, इमरसन प्रोफ़ेसर जेमसादि के सिद्धान्तों को अंग्रेज़ी, में जाँचा, और सबका सारांश यह पाया कि आत्म-साक्षात्कर होते ही सारा जगत अपना शरीर हो जाता है, अपने से भिन्न कुछ नहीं रहता। इतनी विद्या होने पर भी उनका स्वभाव बड़ा सरल था, अहंकार का लेशमात्र नहीं था, सदा, हँसते रहते थे, सब के साथ प्यार से बोलते थे, किसी प्रकार का अभिमान नहीं था, देशभक्ती से परिपूर्ण थे, परोपकार स्वाभाविक था, दिन रात इसी विचार में बीतता था कि भारत का कल्याण कैसे हो। उनको निश्चय था कि समष्टि और व्यष्टि दोनों का रोग एक है और उसकी चिकित्सा भी एक ही है, ईश्वर में निवास करो और कराओ, फिर आनन्द ही आनन्द है; ऐसा न करने से दुःख ही दुःख है। वह शुद्धाहार, शुद्धाचार, शुद्ध व्यवहार की मूर्ती थे। अमरीकादि देशों में अत्यन्त क्लेश सहने पर भी कोई अभक्ष्य पदार्थ ग्रहण नहीं किया; खटाई मिठाई नमकीन जो कुछ कोई देता था एक कमण्डलु में डाल कर खा लेते थे। कभी खाली नहीं बैठते थे। सदा

कुछ न कुछ उपदेश, विचार वा पाठ किया करते थे, और इतने बड़े परिश्रमी थे कि तीनों वेद-भाष्य, निरुक्त सहित ब्रह्मविद्या-भरण, चित्सुखी आदि वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थ एक साल में ऐसे पढ़ डाले कि जैसे कोई बड़ा पण्डित पढ़ता है। वह शरीर को कभी शिथिल नहीं होने देते थे, और सदा व्यायाम करते थे। यदि किसी ने दुशाला दिया तो वह भी ओढ़ लिया, कम्मल मिल गया तो उसी में सन्तुष्ट रहे। उनका कथन था कि जब जीव ईश्वर दो नहीं किंतु एक ही हैं, तो जो मनुष्य द्वैत-भाव को त्याग कर काम करेगा, उसके साथ सारा जगत अवश्यमेव मिल कर काम करेगा; दुःख से मोक्ष और क्लेशों का अन्त यदि चाहते हो, तो शरीर को कार्य्य में उद्यत और मन को शान्त रक्खो, जब सब को अपना आत्मा जान लिया, तो फिर सारे विधि निषेध का भेद खुल गया। बड़े एकान्त सेवी थे। पहाड़ों और जंगलों में विचरना बहुत पसन्द था। मान अपमान का ध्यान रंचक मात्र न था।

महात्मा मथुरा पुरीजी ने धर्म के विषय में जो प्रश्न

धर्म तत्व किए उनके उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि "यद्यपि धर्म देश काल और अधिकारी भेद से बदलता भी रहे तथापि उसका साधारण लक्षण चित्त की वह बढ़ी चढ़ी अवस्था है कि जिससे शान्ति, सतोगुण, उदारता, प्रेम, शक्ति और ज्ञान स्वयं प्रगट हों, सब जगत अपना आत्मा दीखे, भेद सर्वथा नष्ट हो जावे, आत्म-ज्योति ही सारे प्रकाशे, इसी का नाम वेदान्त अर्थात् वेद (ज्ञान) का अन्त (परिणाम) है। इस धर्म की जीव को ऐसी आवश्यक्ता है जैसे वृक्षों को वायु की, प्राणियों को अहार की। इसी का पर्य्यवसान समाधि है कि जिसमें अहं-मम

का गन्धमात्र भी शेष नहीं रहता, परिच्छिन्न भाव मिट जाता है, जिस से व्युत्थान होने पर अपने सुख दुःख की विस्मृति होकर देश भर का क्या, जगत भर का सुख दुःख अपना ही भान होता है। उपनिषद्-गीतादि सत्-शास्त्रों का पुनः पुनः विचार और ऐसे ज्ञानियों का संग जिनके पास बैठने से चित्त शुद्धि हो जावे मुख्य उपाय हैं। कम से कम दिन रात में पाँच बार अपने अन्दर से अज्ञान और पाप को निकालना, अन्तर्मुख हो कर चित्त से संकल्पों और वासनाओं को हटाना और "तदेवाहस्मि" इस महा-वाक्य का अनुसन्धान करना चाहिये। अपने आत्मा को जिसमें शरीर और मन तरंगवत् लहराते हैं जानना और तन्मय होना इस धर्म का परम उद्देश्य है। जिस चित्त की एकाग्रता के विना कोई सांसारिक विषय नहीं मिलता, वैसी एकाग्रता यदि तुम आत्म-विचार में एक क्षणमात्र के लिये भी करो, तो सारा ब्रह्माण्ड अपने में दीख जायगा। यदि थोड़ी सी देर भी इस चित्त को जीतने की संग्रामभूमि में कूद कर बुद्धि और मन को देश काल और क्रिया के परिच्छेद से हटादो, तो वह निर्भय पद प्राप्त होगा और बल की वह नदी बह निकलेगी कि जिसमें मग्न हो आनन्द ही आनन्द होगा। जब तक यह नाम रूप की कैद आत्मा को बन्द कर रही है, स्वयं प्रकाश आत्मरूपी सूर्य के ऊपर यह अहं, मम् का बादल छा रहा है, अन्तरदृष्टि अविद्या के अन्धकार से ढकी हुई है; तब तक भय, कायरता, दुःख और क्लेश हैं। जब मन बुद्धि प्राण और इन्द्रिय आत्मा में लय हो गये तो फिर दुःख कहां? प्राणीमात्र को सुषुप्ति अवस्था यों सुख दायक है कि उसमें देह, इन्द्री, मन और बुद्धि सब आत्म

में लय हो जाते हैं। जब तक यह अवस्था रहती है, सुख होता है। समाधि दशा में जहां इनका लय ज्ञान से हो, तो वहां आनन्द का कहना ही क्या। यहां पर सब शास्त्रों की समाप्ति है। इसी अवस्था के सम्पादन करने के लिये सारे साधनो की अपेक्षा है। धर्म के साधक यह हैं (१) ऐसा भोजन करना चाहिये और इतना करना चाहिये जो शीघ्र पच जावे (२) नींद भर सोना चाहिये (३) सायं, प्रातः व्यायाम करना चाहिये (४) ऐसे संगति से बचना चाहिये कि जिससे द्वेष उत्पन्न हो, यदि किसी महात्मा का संग न मिले तो अकेला रहना ही भला है (५) शुद्ध आचार, शुद्ध व्यवहार, सत्य, उदारता, क्षमा, सदा परोपकार में तत्पर रहना, धर्म के मुख्य साधन हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है, अथवा जिन लोगों के पास बैठता है, या जैसा आचार व्यवहार करता है; वैसी उसके चित्त की दशा हो जाती है। जो संस्कार अनेक जन्मों से इस प्राणी के होते हैं। और जैसी माता पिता के शुक्र शोणित की शक्ती होती है वह अवश्य फलती है, परन्तु शिक्षा और सत्संग से बुरे संस्कार भी शुद्ध हो सकते हैं। वृक्षों और पशुओं के संस्कार देश काल तथा आहार से पूरे नहीं पलट सकते, परन्तु मनुष्य में वह शक्ति है कि जिससे वह इनको अपने अधीन कर सकता है। ऐसी शक्ति यदि सर्वथा पूरी २ सम्पादन की जाये और काम, क्रोध, लोभ, आदिक का जड़ से नाश करके अपने आप को सब में और सब को अपने आप में देखा जाय, तो सारे संस्कार बुरे नष्ट हो जावेंगे। यह किसी विशेष व्यक्ति का वर्णाश्रम पर निर्भर नहीं है। जिसके अन्दर उसकी तीव्र चाहना होगी, उसी को मिलेगा। कृष्ण महाराज से सहस्रों राजे

महाराजे मिले, परन्तु गीता तो किसी ने न सुनी, अर्जुन ने सुनी, और वह भी उस समय जब राज्य-मान (जीव) अपने पराये, दीन दुनियां को कृष्ण के चरणों में अर्पण करके वैराग्य स्वरूप हो गया। यदि इच्छा सच्ची है तो यह असम्भव है कि कोई ज्ञानी जिसको अपने आत्मा का साक्षात्कार है न मिले। गुरू आप खिचकर चले आयेंगे, यदि शिष्य के मन में वासना शुद्ध है। कोयलों को आग लगी हुई ओक्सिजन को आप से आप खींच लेगी। यदि सत्यान्वेषण में परायण हों, तो सत्य की प्राप्ति अवश्य होगी।"

दुःख का कारण और उसका निवारण

"जितनी ठोकरें मनुष्य को लगती हैं, जितने दुःख और क्लेश होते हैं, उनका कारण बाहर से तो कुछ और दीख पड़ता है, परन्तु अन्तर मुख होकर पक्षपात, धोखे और राग द्वेष को हटाकर देखने से यही प्रगट होगा कि अध्यात्म-अवनति आधिभौतिक दुःख का मूल कारण है। चित्त में आत्मा अथवा ब्रह्म की विस्मृति होकर नाम रूप के फन्दे में पड़ना ही दुःख है। जब यह चित्त स्त्री की चाह में डूबा या किसी को अपना शत्रु जानकर ज़हर उगलने लगा, या जो वस्तु कि स्वयं प्यारी नहीं थी किन्तु इसलिये प्यारी थी कि अपना आत्मा सब को प्यारा है, उसे प्यारा मानने लगा, तो उसको सिवाय दुःख के और क्या होगा। जब कोई आदमी राजा को राजा, धनाढ्य को धनाढ्य, देवता को देवता, पँच महाभूतों को महाभूत-दृष्टि से देखता है, तो वह धोखा खाता है। बुद्ध भगवान का सिद्धान्त था और उन्होंने शिष्यों और अनुयायियों को यह सुनाया कि "जो जैसा चिंतवन करेगा, वैसा वह हो जावेगा।" यदि इसी नियम को " सब जगत् मेरा ही आत्मा है, मुझ से

मिश्र नहीं," अपने सामने रख कर सांसारिक विषयों को देखो, तो ये विषय विरूप होकर तुम्हें न डसेंगे ॥

यह काकुले-ज़ुल्माते-माया पेच पेचां है बले।
सीधे को अलचप-राम है,उलटे को डसता मार है ॥

अर्थात् यह माया रूपी सुन्दर स्त्रीके मुखपर जो काले२ पेंचदार बाल लटकते हैं, वह ज्ञानी के लिये तो ब्रह्म की महिमा है, और अज्ञानी के लिये विष से भरे हुए सर्प।"

क्या इन्तिज़ारो क्या मुसीबत क्या बला क्या ख़ारे-दश्त।
शोला मुबारिक जब भड़क उट्ठा तो सब गुलज़ार हैं ॥

अर्थात् प्रतीक्षा, आपत्ति, दुख, और जंगल के काँटे क्या चीज़ हैं, जब प्रेम-अग्नि भड़क उट्ठी तो सब गुलज़ार होगया। इस नियम पर सारी सृष्टि चलती है, क्या समष्टि क्या व्यष्टि। जिस देश अथवा जाति में सत्य और अपने को सब का आत्मा जानना प्रबल है, वह देश और जाति सदा सुखी और श्री सम्पन्न रहेंगे। जिनमें यह नहीं है, उन में दुःखही दुःख होगा। यही सचा धर्म है, इसी पर चलने से कल्याण है। रस्म और रिवाज, खाना, पीना, स्वर्ग-नरक के उपायों का विचार, आचार और विचार का आन्दोलन, ये सब इस के अंग हैं। सब का अंगी यह धर्म है कि "आत्मवत् सब को देखो।" जो लोग कि इस धर्म को भूल कर बाहर की बातों पर व्यर्थ वादविवाद में समय खोते हैं, उनको कभी कुछ हासिल नहीं होता, जो लोग इस धर्म को नहीं जानते, वही एक धर्म को बड़ा दूसरे को छोटा मानते हैं; एक को छोड़, दूसरे को ग्रहण करने को तैयार होते हैं। सच्चे धर्म में न मतमतान्तर का खंडन मंडन है, न वादविवाद। उस में अपने अन्तःकरण की शुद्धी ही मुख्य है।"

जगत क्या है

"लोग अपना समय इस विचार में खोते हैं कि यह जगत कैसे उत्पन्न हुआ; यह नाम रूपात्मक प्रपंच मायामात्र है अथवा नहीं, तीन काल में विद्यमान है या नहीं। इन सब प्रश्नों का उत्तर न किसी ने अब तक दिया न कोई दे सकता है, क्योंकि जिस नामरूपात्मक जगत के अधिष्ठान को जानना चाहते हो वह देशकाल के बाहिर है, देशकाल और क्रिया से बद्ध बुद्धि द्वारा कैसे जाना जावे। इसलिये इन विचारों पर समय व्यतीत करना व्यर्थ है। वर्तमान समय की पदार्थ-विद्या (साइंस) में सत्यान्वेषण के यह नियम रक्खे गये हैं कि भेद से अभेद को पाना, अर्थात् नानात्व में एक को ढूंढ़ना। जैसे एक फल का किसी वृक्ष से गिरना उसी नियमानुसार है कि जिस से चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द फिरता है। इसी को वह आकर्षण नियम कहते हैं कि जिसे साइंस ने नाना प्रकार के पदार्थों की आकर्षण शक्ति को देख कर सिद्ध किया है। इसी प्रकार धर्म में भी जितने भेद ऊपर से दृष्टि आते हैं, उनके अन्दर एक ही नियम वर्त रहा है। उस नियम को जानना और उस पर चलना ही धर्म का फलितार्थ है। यूरोप के साइंस के विद्वान् बुद्धिबल से द्वैत से अद्वैत पर पहुंचने का प्रयत्न कर रहे हैं; इस दृश्यमान जगत् में अधिष्ठान् एक ही है, यही पुकारते हैं। हमारे उपनिषद्, मुसल्मानों का तसव्वुफ़, चीन की ताओइज़म, पारसियों का जन्दवस्ता आदि भी और कुछ नहीं कहते। साइंस प्रत्यक्ष प्रमाण से धर्म का तत्व साक्षात्कार कर रहा है। जिस धर्म में तत्व साक्षात्कार नहीं, वह धर्म नहीं। साइंस नामरूप तथा इन्द्रियों के आधीन है, धर्म अन्तरात्मा का अनुभव करता है, इसलिये उनको वेद इन्द्रियाधिप की अपेक्षा नहीं। यही नियम

जगत के तत्त्व के अन्वेषण में काम लाना पड़ेगा, व्यर्थ वाद-विवाद नहीं।"

"जितने जाति भेद, मतभेद, सम्प्रदायभेद, आश्रमभेद हैं, वह केवल इस वास्ते हैं कि काम अलग २ हों, परन्तु लक्ष्य एक हो। इसी के भूलने से सारी आपत्ति हुई है। शास्त्र और स्मृति हमारे लिये हैं न कि हम शास्त्र और स्मृतियों के लिये। भारतवर्ष के नदियों का बहाव पलट गया, पहाड़ों पर बर्फ़ के गिरने की जगह हट गई, जंगल कट गये, नए २ शहर आबाद हो गये, ज़ुबान पलट गई, लोगों के रंग रूप और के और हो गये, परन्तु हम ऐसी रस्मों और रिवाजों को जिनमें कुछ जान बाक़ी नहीं है रखना चाहते हैं। हमारी वही मसल है कि आगे को तो चलें और पीछे को देखें। हम यह तो कहते हैं कि हम ऋषियों की सन्तान हैं, परन्तु इस बात को भूल गये कि ऋषियों के ज़माने में रेल, तार, बिजली, स्टीमर आदि कहां थे; उनको यूरोप और अमेरिका के बीसवीं सदी के साइंस के जानने वाले कारीगरों और विद्वानों से कहाँ मुक़ाबिला करना पड़ा था। इसलिये या तो हम वर्तमान समय के साथ चलने के योग्य बनें, या पितृ-लोक को सिधारें। जो लोग देशभक्ति पुकारते हैं, वह जब तक देश के साथ ऐसे एक चित्त न होंगे कि जिस से द्वैत का नाम भी न रहे, कुछ न कर सकेंगे। जब दिल में यह बात दृढ़ हो जायगी, रोम २ से यह फूट निकलेगा कि "मैं ही भारतवर्ष हूँ, सब भारतवर्ष मेरा ही शरीर है, मेरी आत्मा सब भारतवर्ष की आत्मा है, यदि मैं चलता हूँ तो भारतवर्ष चलता है, यदि मैं दम लेता हूँ, तो भारतवर्ष दम लेता है, मैं हीं शंकर हूँ, मैं हीं शिव हूँ," तब ही हम

भेद और उसके दूर करने के उपाय

भारत के सच्चे पुत्र होंगे ।-। अजगर कृष्ण को निगल गया, परन्तु पचा न सका । यही हाल हमारा है । मरने पर तो "राम राम सत्य है" कहते हैं, परन्तु जीते जी राम राम सत्य नहीं कहते । मरते समय तो गीता सब को सुनाते हैं, जीते जी ही क्यों नहीं अपने जीवन को भगवद्गीता अर्थात् भगवान का गीत बनाते ? मा ने बच्चे को आम चूसने को दिया, आम चूसते २ मुँह रस से भर गया, कपड़े भी रस से पूर्ण हो गए, और आम्र के चूसने में उस बालक को न आम्र की खबर, न मा की, न कपड़े की रही, रसही रस होगया; इसी प्रकार यदि श्रुति भगवती का दिया हुआ महा-वाक्य रूपी आम्रफल हमारे मुख में पड़ने ही हमको रस रूप कर सच्चा देशभक्त, सच्चा भारतवर्षी न करे तो और कौन करेगा ।"

"सब लोग ऐक्यता ऐक्यता तो पुकारते हैं परन्तु उसका वास्तविक कारण नहीं ढूंढते । वह यह है कि हम वर्तमान समय के साथ पिछले वक्तों को तोलने का प्रयत्न नहीं करते । क्या एकयता अविद्या और अन्धकार से जो हम पर छा रहा है पैदा हो सकती है ? जब तक इस बात पर ध्यान नहीं दिया जावेगा कि खाने वालों की संख्या के बढ़ने के साथ २ खाने की सामग्री भी अधिक पैदा होनी चाहिये; जब तक यह होगा कि एक तो खाए और दस मरें भूखे; तब तक कुछ न होगा । जब हिन्दुस्तानसे बाहिर पाओं रखते ही जाति बाहर होता है, एकयता कहां ? चाहे जन्म-पत्रियां मिलवाओ,मन्त्र पढ़ो, पूजा करो, क्या ऐसे घर जहाँ बच्चे व्याह के नाम से बांधे जावें, फल फूल सकते हैं ? जब इन बालविधवाओं की प्यारी प्यारी आँखों से आँसू गिरते देखकर भी हमारा कलेजा नहीं फटता, तो फिर हम ऋपियों

की सन्तति कैसे बदल सकते हैं ? इन विधवाओं की आह हम को यदि काली भवानी की नाईं न खावेगी, तो और क्या होगा ? जब तक हम ब्रह्मचर्य की पूरी रक्षा न करेंगे, हम नष्ट होने से कैसे बच सकते हैं ? जब तक स्त्रियां अनपढ़ और धनाढ्य लोग अविद्या ग्रसत और देश सुधार से अनभिज्ञ अथवा विरोधी हैं, क्या हो सकता है ? यह सब अविद्या की वृद्धि से हुआ है। जब धर्म का तत्व विद्या द्वारा ढूंढ़ा जावेगा तबही हमारा और देश का कल्याण होगा।"

अगस्त १९०२ में स्वामी राम जापान होते हुए अमरीका देश सुधार पर विचार गए। वहां उनकी कषाय-वस्त्र धारण करने वाली मूर्त्ति चित्रकारों को एक अग्नि का स्तम्भ सी, कि जिससे शब्द नहीं किन्तु ज्ञानकी चिंगारियां निकलतीं थी, प्रतीत हुई। वहां के लोग कहते थे कि उनके पीछे भी उनकी ज्ञानामृत से परिपूर्ण मूर्त्ति उनके कमरों में विराजती थी। अमरीका में केलीफोरनिआ के विद्वानों ने उनका यह कहकर स्वागत किया कि आपके तत्वसाक्षात्कार के सामने हमारी सारी सभ्यता बिखर जावेगी। अमरीका में उन्हों ने गिर्जाओं और अन्य स्थानों में व्याख्यान दिये। पेसिफिक रेलरोड कम्पनी के अध्यक्ष ने पुलमन्कार जो रेल में सबसे उत्तम गाड़ी होती है उन को अर्पण करके कहा कि आप की सौम्यता अद्वतीय है। सेंट लूईस की प्रदर्शनी में वहां के वर्त्तमान पत्रों ने कहा कि स्वामी राम ही सारे मेले के जीवन-प्राण थे। स्वामि जी अमरीका में दो वर्ष रहे, परन्तु भारत सदा चित्त पर रहा। वहां उन्हों ने क्लेश सहे, परन्तु अभक्ष्य न खाया। तर्कारी के आहार पर ही सारे दिनों रहे। अमरीका में उनको यह निश्चय हुआ कि यहां

की उन्नति वास्तव में सुख का हेतु नहीं। रुपया कमाते कमाते मर जाना, अपने भाइयों से आप को सर्वथा अलग करके बहुत सजे हुए कमरों में रहना, अपने ऐश्वर्य और भोग में उन्मत्त हो दूसरों को कुछ न समझना, अधर्म से धनके पर्वत उपार्जन करना, कभी चित्त में शान्ति न लाना, सदा उद्विग्न व चिन्ताग्रस्त रहना, यह सब सुख नहीं दुःख है। इस उद्वेग को त्याग कर अन्तर्मुख होकर आत्मवत् सब को देखने में ही सुख है। यदि सुख चाहते हो तो इस दौड़ धूप, इस धनोपार्जन के ज्वर को छोड़ो। भारत की यही दशा है। इतना विशेष है कि यहां काम करने वाली बुद्धि का बहुत कुछ अभाव है। प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि मैं अपना ही भला कर लूँ, चाहे देश गिरे अथवा रहे। यह असम्भव है कि यदि किसी शरीर में हाथ तो प्रबल हों और अन्य सब अंग दुर्बल। देशोन्नती के लिये सब से पहिले एकाग्र चित्त हो काम में प्रवृत्त होना अवश्य है। इसी का नाम सच्चा वेदान्त है। लोग कहते हैं कि वेदान्त में कर्म के त्याग से ही शान्ति, सुख और मोक्ष होती है, परन्तु वे नहीं जानते कि अपने आप को भूल कर तन्मय हो परार्थ उद्योग करना ही कर्म का परम त्याग है। जब कोई विद्वान पण्डित, कारीगर, कवि अथवा गणित वेत्ता किसी गूढ़ विषय के विचार में प्रवृत्त होता है, तो जब तक अपने को सर्वथा भूल कर, एक चित्त होकर, तन्मय नहीं हो जाता, कोई बात सिद्ध नहीं होती। देहेन्द्रियादि को विस्मरण कर अपने इष्ट विषय के ध्यान में मग्न होने से ही सिद्धि होती है, जो विषय कभी नहीं सूझा था सूझ जाता है। उत्तम प्रवृत्ति ही परम योग, परम वेदान्त है कि जो जङ्गल में भी ऐसे ही सिद्ध हो सकती है जैसे कि नगर में। जब

तक तुम देहेन्द्रियादि को निरन्तर कर्माग्नि में न जलाओगे; जबतक तुम्हारे अन्दर कर्म का दीपक प्रज्वलित न होगा, तैल बत्ती का लालच करोगे; तब तक कोई काम सुफल न होगा, सब उद्योग निष्फल होंगे। चित्रकार चित्र के बनाने से पहिले किसी के सुन्दर नेत्र, किसी का मुख, किसी के हाथ, किसी के पाँव, किसी की छाती देखकर अपने चित्त में रखता जाता है, और समय पाकर अपने अन्दर से निकाल कर चित्र में ले आता है। उसका देखकर चित्त में रखना भी उद्योग था। इसी प्रकार सच्चा काम करने वाला हर तरफ से अपने काम की सामग्री एकत्र करके समय पाकर उसे काम में लगा देता है। नियम यह है कि बराबर काम करो; कभी काम से खाली न रहो। फलाभिसंधि त्यागो। जब तक यह आशा बनी हुई है कि अमुक कर्म से मुझे अमुक लाभ होगा, तबतक कोई उद्योग सिद्ध न होगा। जब यह आशा न रहेगी, तब सारे उद्योग सुफल हो जावेंगे। यह त्यागही मोक्ष का द्वारा है। यही परम कैवल्य है। शरीर के शोषण से त्याग का लक्ष्य उससे बहुत ऊंचा है। वह अहंभाव का अभाव है, जो जितना देता है उतनाही वह सुखी होता है, जितना वह लेता है उतना ही वह सुखी नहीं। सूर्य्य की किरणों में सातों रंग होते हैं, परन्तु प्रत्येक पदार्थ उन सब को अपने अन्दर नहीं लेता, कुछ रङ्ग ऐसे रह जाते हैं कि जिनको वह त्याग देता है, वही उसकी शोभा का हेतु होते हैं; इसी प्रकार चित्तमें भी नाना प्रकार की वासनाएं फुरती हैं, हम चाहते हैं कि हमारी सब इच्छाएं पूर्ण होजायें, परन्तु किसी की सारी आशाएं न पूर्ण हुईं, न होंगी। आशा के पूर्ण होने का मूल मन्त्र आशा का त्याग है। जब तक योधा धनुष की ज्या को खेंचे

रहता है, वाण नहीं छूटता, डोरी को ढीला छोड़ते ही वाण छूट जाता है; इसी प्रकार आशा की डोरी को ताने रहने से आशा पूर्ती का वाण नहीं छूटता, उस के ढीला छोड़ते ही छूट जाता है। जबतक अपने आप को औरों से पृथक जानोगे, तब तक कोई उद्योग सुफल न होगा, कोई सिद्धी नहीं मिलेगी। जब यह परिछिन्न भाव दूर होगा, जब प्रेम से परिपूर्ण होकर सब के साथ ऐसे ही प्रीती करोगे जैसे अपने शरीर के अंगों से, संबन्धियों से; तब सारी सृष्टि, सब देशकाल तुम्हारे अनुकूल हो जावेंगे। जो अपने को सर्व रूप देखता है, जिसने अपने चित्त को जगत के साथ एक कर लिया, उस के पवन, अग्नि, जल, सब सहायक होजाते हैं। जैसा चित्त में होता है, वैसाही वाहिर फुरता है, वैसाही दूसरों पर भी असर होजाता है। कहते हैं कि एक वादशाह शिकार को गया, मार्ग में अपने साथियों से अलग हो प्यास का मारा किसी वाग में पहुंचा, माली से पानी मांगा, वह तत्काल एक सुन्दर अनार का फल ले• आया और रस निकाल प्याला भर दिया; परन्तु वादशाह की प्यास न बुझी और दूसरा प्याला मांगा। ज्योंही माली लेने गया, वादशाह के चित्त में यह फुरा कि ऐसे सुन्दर वाग के मालिक पर अवश्य कर लगाना चाहिये। वादशाह यह सोचही रहा था कि माली दूसरा फल लेकर आगया, परन्तु उसके रस से प्याला न भरा। वादशाह ने कारण पूंछा। माली ने उत्तर दिया कि पहिले आपके मन में कालुष्य नहीं था इस लिये प्याला भर गया था, अब हो गया इस लिये नहीं भरा। सच है कि वाहर का जगत अन्दर के जगत का प्रतिविम्ब मात्र है। यदि चित्त में प्रेम होगा तो जगत भी प्रेममय भासेगा; द्वेष होगा तो द्वेषयुक्त

मासैगा। चित्त की प्रसन्नता, सन्तोष, शान्ति बड़ी चीज है। उद्विग्नचित्त का कोई उद्योग सुफल नहीं होता। प्रसन्न चित्त पुरुष के ही सारे काम पूरे होते हैं। यह प्रसन्नता कथन मात्र से नहीं आती, किन्तु अनात्म वृत्तियों को हटा कर आत्मा में प्रतिष्ठ रखने से आती है। जब अपने आत्म-देव में दृढ़ निष्ठा बांधोगे, जब यह निश्चय हो जावेगा कि यह देहेन्द्रियादि मैं नहीं हूं, न मैं किसी बन्धन से बंधा हूं, किन्तु नित्य शुद्ध नित्य मुक्त हूं; जब नटवत अपने आप का इस जगत रूपी तमाशा-घर में एक तमाशा करने वाला जान कर उस में आसक्त न होगे; जब अपनी ही आत्मज्योति से प्रकाशोगे, तो क्या ताकत किसी की है जो तुम्हारे मार्ग में विघ्न डाले। देवता भी उस ज्ञानी के, जो अहंभाव और आसक्ति को त्याग कर कर्म में प्रवृत्त होता है, सहायक हो जाते हैं। देखो, बच्चा कैसा स्वतंत्र है, सब पर कैसा अधिपत्य चलाता है, बड़ों बड़ों की डाढ़ी खेंचता है, किसी के शिर पर चढ़ता है, किसी की गोद में मूतता है; परन्तु सब उसकी सहते हैं, क्योंकि उसको अभिमान नहीं और न देहेन्द्रियादि की कुछ सुध है; ज्योंही उन बच्चे में कुछ सुध आ गई, वह अपने अधिपत्य से गिर गया। यह अहंकार ही चित्त की प्रसन्नता और सन्तोष का नाशक है। इसको हटा कर जब चन्द्र, सूर्य्य, नक्षत्रों की नाई ईश्वर की नीतिपालन मात्र दृष्टि से काम करोगे, तब सारे दुःख दूर हो जावेंगे। आधिव्याधि, जन्म, जरा, मृत्यु, इष्ट के वियोग, अनिष्ट के संप्रयोगादि, सारे क्लेश तब तक ही हैं, जबतक अहंमम है। जब यह नहीं, तो फिर दुःख कहां, शोक कहां, आशा भंग कहां? यही सच्चा वेदान्त है। भय ही सारे उद्योगों को

सिद्धि में विघ्न है। शरीर के क्लेशों का भय, धन के नाश का भय, लोक-भय, इत्यादि भय ही सारे शुभ कार्य में विघ्नकारी हैं। परन्तु आत्मा-ब्रह्म अभय है, जब उसने अभय पद में दृढ़ निश्चय बांध लिया, तो सारे विघ्न आप से आप जाते रहे। जिस के चित्त में भय नहीं, उसके सामने भयकी सामग्री खड़ी नहीं रह सकती। स्वामी राम का यह दृढ़ निश्चय था। उनके पास एक बार पाँच जंगली भालू आ गये, परन्तु वह कहते हैं कि मेरे चित्त में भय बिल्कुल नहीं हुआ, क्योंकि मैं अपने आप को देह नहीं जानता था, मैंने उन भालुओं की ओर नज़र भर कर देखा कि देखते ही भाग गए। इसी प्रकार भेड़िये सिंघादि भी आए और आँखें चार होते ही भाग गए।

स्वामी राम कहते हैं "ज़रूरत है सुधारकों की, न कि औरों के किन्तु अपने आप के सुधारकों की। ज़रूरत है ऐसे लोगों की कि जिन्हों ने युनिवर्सिटियों की पद्वियों के स्थान में मन की विजय की पद्वी पाई हो। जो महानुभाव इस पद की आकांक्षा करें, उन के लिये अवस्था का कोई नियम नहीं। वह तो सदा युवा ही गिने जावेंगे। इस पद का वेतन ईश्वर भाव है। पत्र-व्यवहार करो, याचना द्वारा नहीं, किन्तु आज्ञापालन द्वारा; सब जगत के नियन्ता अपने आत्मदेव से"। "साधु वह कि जिसके अन्दर ज्ञानाग्नि ऐसी भड़क रही हो कि देह का अभिमान, या साधु होने का अभिमान; या रेल तार आदि से नफ़रत, या पुराने ढंगों से मुहब्बत, नितान्ति (बिल्कुल) जल जाय; सारी दुनियां को उसके ज्ञानाग्नि के प्रकाश से उजाला पड़ा हो और आगे चलने का रास्ता पड़ा नज़र आए। अगर यह नहीं, तो गीला ईन्धन है, जो धुआं ही धुआं कर रहा है

जिससे सब लोगों का नाक में दम हो रहा है। जब तक सूखेगा नहीं, न आप रोशन होगा, न किसी को उजाला करेगा; दिल नहीं रंगा तो कपड़े रंगने से अपना या पराया दुःख कहां दूर हो सकता है?

स्वामि रामतीर्थ जी से पूछा गया कि आप सब पदार्थों को एक कमण्डलु में क्यों डाल कर खाते हैं; उत्तर दिया कि जो रसास्वादादि चाहता तो घर क्यों छोड़ता। महाभारतमें कहा है कि "धैर्य्यसे शिश्नोदर को रोको-अर्थात् बुरे खाने से बचो। पर स्त्री का ध्यान न करो। हाथ पाँव को नेत्रों से रोको, अर्थात् बुरे कर्म करने, बुरे स्थानों में जाने से बचो। नेत्र और श्रोत्र को मन से रोको, अर्थात् बुरे शब्द मत सुनो, बुरी वस्तुओं को न देखो। और मन और वाणि की कर्म से रक्षा करो, अर्थात् बुरे संकल्पों को और पर निन्दा को त्यागो"। स्वामि राम ने एक आख्यान इस प्रकार कहा कि लाहौर में किसी बड़े घर की एक विधवा स्त्री जो तरुणी और सुन्दर थी किसी महात्मा के पास दिखावट के लिये तो उपदेश को गई, परन्तु मन में पाप था। महात्मा ने जान लिया और अपनी शुद्ध वृत्ती का प्रभाव उस के चित्त पर ऐसा डाला कि जो बात दिखावट से करती थी वह वास्तविक हो गई, और उसने यथार्थ त्याग किया। सच है कि सच्चे महात्मा की दृष्टि-गोचर होतेही अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता है। पदार्थ संग्रह का सर्वथा त्याग और अपनी ज़रूरतों को घटाना पहिली चीज़ है। जो धन साधु जमा करे वह या तो काम में आवे, या पड़े पड़े सड़ जावेगा, या अदालतों में जैसा के होता है खर्च होगा। जितने सच्चे महात्मा हुए वा विद्यमा हैं, वह वस्तु-संग्रह को बहुत

विक्षेपकार जानते हैं, उतने खाने या वस्त्र से जिस बिना शरीर यात्रा न चल सके अधिक रखना बोझ मालूम होता है। स्वामि राम को इधर लोग बहुमूल्य वस्तु देते थे, उधर जहां उसकी आवश्यकता न रही तत्काल दूसरों को दे दी, या फेंक दी। सिवाय एक कमण्डल के और कुछ नहीं रखते थे, कभी कभी फेंक देते थे। भारत में सच कहा है।

विस्ताराः क्लेशसंयुक्ता संक्षेपास्तुसुखावहाः।
परार्थविस्तराः प्रोक्तास्त्यागमात्महितोविदुः॥

(अर्थ) जितने विस्तार हैं वे क्लेशदायक हैं, संक्षेप ही सुखदायक है, विस्तार दूसरों के लिये हैं, त्याग अपने लिये है।

स्वामी राम जहां जाते थे वहां जाते ही सहस्रों लोग उनके पीछे हो सुनने को आ इकट्ठे होते थे। सच का बड़ा बल है। यदि वक्ता के चित्त पर उसके कथन का उतना ही प्रभाव है जितना वह श्रोता पर डालना चाहता है, यदि उसका कथन न्यायानुकूल सत्य और प्रेमपूर्वक है, यदि वह श्रोता की बुद्धी को विचार कर कहता है, यदि वह यह जानता है कि जो अर्थ अपने शब्दों का मैं समझता हूँ वही श्रोतागण भी समझ; तो यह असम्भव है कि उसकी बात न मानी जावे। स्वामि राम के कथन का तत्काल असर होता था, क्योंकि उनका हर शब्द उनके हृदय से निकलता था। एक बार गाज़ीपुर में वह एक व्याख्यान के मध्य में सहसा इस कारण बैठ गए कि उनको अपने कथन का असर अपने ऊपर प्रतीत न हुआ। वर्त्तमान समय में धर्म का इतना उपदेश होने पर भी और इतने साधु गृहस्थों के धर्म धर्म पुकारने पर भी श्रोता वक्ताओं में रागद्वेष, काम क्रोध, लोभ-मोह बहुत करके देखने में आते हैं, जिससे

धर्म की वृद्धि नहीं होती। यही हाल वेदान्त के उपदेशों का भी है। कारण यह कि कहा बहुत जाता है और किया थोड़ा जाता है। किसी ने परमहंस स्वामि भास्करानन्द जी महाराज से जो तितिक्षा की मूर्त्ती थे पूंछा कि आप सुखी हैं या नहीं। उत्तर दिया कि मेरा द्वैतभाव नष्ट नहीं हुआ, इसलिये सुख कैसे हो सकता है। वह हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज़, छोटे बड़े सब से प्रेम करते थे, किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं था। सब लोग उनको सिद्धवत मानते थे। परन्तु वह भी आंखों से आंसू बहाकर वसिष्ठ भगवान् का यह श्लोक पढ़ा करते थेः—

न केनचद्विक्रीता विक्रीता इव संस्थिताः।
बत मूढ़ा वयं सर्वे जानाना अपिशांवरम्॥

अर्थ—यद्यपि किसी ने हमें बेचा नहीं, तथापि बिके हुए के समान स्थिति हैं। खेद की बात है कि जानकर भी कि यह माया है, हम मूढ़ हो गए हैं।

जब ऐसे जगद्विख्यात परमहंसों की यह दशा है, तो औरों की तो बात क्या? यदि सब उपदेश कहें थोड़ा और करें बहुत, तो धर्म अधिक सफल होगा।

स्वामि राम कहते हैं "समाधि और मनकी एकाग्रता तो तब होगी, जब तुम्हारी तरफ से माल मकान पर मानो हल फिर जावे, स्त्री-पुत्र, वैरी-मित्र पर सुहागा चल जावे, सब साफ हो जावे, राम ही राम का तूफान आ जावे, कोठे दालाम बहा ले जावे। दुःखी-दुष्ट में और रंगीले मस्त में फर्क इतना है कि एक के चित्त में कामना का अंश ऊपर है और भक्ति का अंश नीचे; दूसरे के चित्त में राम ऊपर और कामना नीचे। एक यदि साक्षर है तो उलट पलट कर दूसरा राक्षस"।

मस्त कहता है—

नज़र आया है हर सू[1] मह-जमाल[2] अपना मुबारिक हो।
"वह मैं हूँ" इस खुशी में दिल का भर आना मुबारिक हो॥
यह उर्यानी[3] रुखे-खुरशीद[4] की खुद पदा हायल[5] थी।
हुआ अब फाश पर्दा[6] सितर उड़ जाना मुबारिक हो॥
यह जिसमो-इस्म[7] का काँटा जो चेढ़ब सा खटकता था।
खलश[8] सब मिट गई, काँटा निकल जाना मुबारिक हो॥
तमसखुर[9] से हुए थे कैद साढ़े तीन हाथों[10] में।
चले अब वुसते-फिकरो[11] तखय्यलसे भी बढ़जाना मुबारिकहो॥
अजब तसखीरे-आलमगीर लाई सल्तनते-आली।
महो-मही का फरमाँ के बजा लाना मुबारक हो॥
न खदशा[12] हर्ज का मुतलक न अन्देशा खलल बाकी।
फुररे का बुलन्दी पै यह लहराना मुबारिक हो॥
तअल्लुक से बरी होना हरूफे-राम[13] की मानिन्द।
हर इक-पहलू से नुक्ता-ए-दाग मिट जाना मुबारिक हो॥

अर्थ—अन्तिम पंक्ति के राम के जो अक्षर फारसी में हैं वह परस्पर भिन्न हैं इसी प्रकार सब सङ्गो से छूटना और हर पहलू से दाग की बिन्दु मिट जाना मुबारिक हो।

हे 'आनन्द स्वरूप ब्रह्मन! आनन्द से हँस, खुशी के राग गा! अब इस माया को अपनी धोखाबाजी मत करने दे। उपनिषद विचार बारंबार"। यही सच्चे साधु का

१ दया। २ ज्योति। ३ नग्नत्व। ४ सूर्य ५ छिपा रक्खा था। ६ पर्दा। ७ नाम रूप। ८ पीड़ा। ९ हास्य। १० देह में। ११ मन की गतिसे भी आगे जाना। १२ भय। १३ राम के अक्षर ر ا م।

कर्त्तव्य है, न कि मण्डली मठ बनाना, चेले मूडना, रुपया इकट्ठा करना, मान बढ़ाना इत्यादि।

कार्त्तिक १६६२में हरिद्वार से स्वामि राम वसिष्ठाश्रम को गए वहां से जो आनन्द के भरे हुए लेख उनकी कलम से निकले वह सामान्य नहीं थे। वह कहते हैं कि मनुष्य इस लिये नहीं बनाया गया कि इसी चिन्ता और फिकर में कि "मेरा जीवन कैसे चलेगा, मेरा क्या होगा" मरजावे। उसको इतना सन्तोष तो चाहिये कि जितना मछलियों, पक्षियों और वृक्षों को होता है। वे धूप अथवा वृष्टि की शिकायत नहीं करते, किन्तु प्रकृति के साथ एक होकर रहते हैं। कहो-"मैं ही यह मेघ हूँ, जो वर्ष रहा है, मैं ही बिजली हो तड़पता हूं, मैं ही गर्जता हूं, मैं कैसा सुन्दर बलवान् भयङ्कर हूं";इसप्रकार शिवोहं स्वतः हृदयसे निकले। आत्म-साक्षात्कार का अर्थ यह है कि अपने आत्मा को परमानन्द रूप जगत में स्फटिक की नाईं प्रकाशमान जानो। मेरे प्यारे! वेदान्त बनावट की बात नहीं। यह जगत कुछ वस्तु नहीं। वही मरता है जो इसे कुछ समझता है। जो कुछ सत्य है वह ईश्वर ही है। यह पदार्थ जो सुन्दर दीखते हैं, इन्हें कृष्ण की नाईं मनरूपी अजगर निगलता तो है, परन्तु पचा नहीं सकता। फिर रोता है, हाय मरा, हाय मरा, प्यारो क्यों तुमने नाम रूप से धोखा खाया है? अब भी सत्य में निवास कर ईश्वर का आश्रय लो। ईश्वर को अपने अन्दर लाओ। ईश्वर के साथ चलो। ईश्वर का सा जीवन करलो। बिना त्यागे संसार के, पदार्थों में जो प्रेमानन्द है, वह कभी न प्रकटेगा। बिना नाम रूप का पर्दा उठाए तुम उस आत्मा को जो उन में छिपा हुआ है कदापि नहीं देखोगे। ईश्वर ही है, नाम रूप

नहीं हैं। पदार्थों के नाम रूपादि से उठकर उन के सत्ता-अंश में चित्त जमाना, पद या शब्द से उठकर उस के अर्थ में जुड़ने की तरह चर्म-चक्षु से दृश्यमान् जगत को मूल ब्रह्म में मग्न होना, यही उपासना है। उपासना साधन है, ज्ञान सिद्ध-अवस्था है। उपासना में यत्न के साथ अन्दर बाहिर ब्रह्म देखा जाता है। ज्ञान वह है जहां विना यत्न के स्वाभाविक रोम रोम से 'अहं ब्रह्मास्मि' के ढोल अन्य सब वृत्तियों को दबादें, और बाहिर से हर त्रसरेणु तत्वमसि का दर्पण दिखाता हुआ भेद भावना को भगा दे। सच्चा उपासक कौन? जिसे लोग उपास्य देव कहते हैं। उपासक कहता है कि अब मुझसे दो दो बातें नहीं निभ सकतीं। खाने पीने, कपड़े-कुटिया का भी ख्याल रक्खूं, और दुलारे का मुख भी देखूं। चूल्हे में पड़े पहनना, खाना, जीना, मरना, इन से मेरा निर्वाह नहीं होता। मेरी तो मधुकरी हो तो तुम, कामली हो तो तुम, औषधि हो तो तुम, शरीर हो तो तुम, आत्मा हो तो तुम, शरीरादि को पड़े रखना चाहते हो तो पड़े रक्खो।

आंखें लगा के तुझ से न पलकें हिलाएंगे।
देखेंगे खेल हम तुम्हें आगे नचाएंगे॥

लोग चाहें अन्ध परम्परा का विश्वास कहें परन्तु राम को तो यह अक्षरशः सत्य है।

न पश्योमृत्युपश्यतिन रोगं नोतदुःखतांसर्वमाप्नोतिसर्वशः॥

ब्रह्मवित् मृत्यु, रोग, दुःख को नहीं देखता। वह सर्व को सर्व प्रकार से व्याप्त करता है। प्यारे ब्रह्म! दृश्य में विश्वास मृत्यु है, राम तेरा सत्य स्वरूप अमृत आनन्द है। तेरा आत्मा-रसास्वाद अनुभव से आसकता है। जिसे अधिष्ठान रूपी रस्सी का साक्षात्कार है उसे भासने वाले

सर्प से बाधा नहीं। जिसने अधिष्ठान रूपी शक्ति को जान लिया, उसे दृश्यमान रजत नहीं खेंचता। जिसे केवल सत का अनुभव हो गया, उसे मुँह देखी दुनिया का भय स्तुति चलायमान नहीं कर सकी। इस दुनियां में जो कुछ दिखाई देता है, वह सब तमाशा है। इदम् चेतन, सत्-ब्रह्म, अस्ति यह ही सत्य है। जो उसे नहीं देखता और इस मिथ्या दृश्य पर यकीन करता है, वह दुर्योधन की नाईं माया के मन्दिर में उसे पानी का जान नहाने को कूद कर आपको हास्य पद बनाता है। तुम्हारा अन्तरात्मा दीन जीव नहीं, किन्तु वह सूर्य है, वह साक्षी चेतन है, जिसके प्रकाश से अन्तःकरण प्रकाशता है।

ऐ मौन दुनिया में बस मतीमन,
खरीदो राहत[1] को मौत के भाव।
न करना चूं तक यही है मज़हब,
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
जिसे हो समझे कि जाग्रत है,
यह ख्वाबे-ग़फ़लत[2] है सख़त, ऐ जाँ।
क्लोरोफ़ारम[3] हैं सब मतालिब[4],
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
ठगों को कपड़े उतार दे दो,
लुटा दो असबाबो-मालो ज़र सब।
खुशी से गरदन पै तेग धर तब,
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
न बाक़ी छोड़ेंगे इल्म कोई,
थे इस इरादे से जम के बैठे।

१ सुख। २ सुषुप्ति। ३ बेहोशी की दवा। ४ अर्थ वासनाएँ।

है पिछला लिक्खा पढ़ा भी शायद,
खड़े हैं रोम और गला रुके है ॥

सन् १९०६ ई० में स्वामि राम वाशिष्ठाश्रम से टिहरी आये और वहाँ गंगा तट पर रहते थे। वहाँ उन्होंने कार्त्तिक वदी १३ संवत् १९६३ को एक लेख 'खुद मस्ती' पर लिखा और उस को समाप्त करके गङ्गा स्नान को गए और फिर न लौटे। उन का अन्तिम कथन है।

"अच्छा जी कुछ भी कहो, राम तो हर रङ्ग में रमता राम है, हर जिस्म (शरीर) में प्राण, हर प्राण का जान है। सब में सब कुछ है। परन्तु इस वक्त कलम बन कर लिख रहा है। सूरज बन कर चमक रहा है। गोली गङ्गा (जिस को लोग श्री गङ्गा जी कहते हैं) बन कर गा रहा है। पर्वत बन कर सब्ज दुशाले ओढ़े कुम्भकरण की तरह पैर पसारे सुपुप्ति में लिपट रहा है। पर अपनी एक सूरत बहुत ही ज्यादा भारी है। मैं हवा हूँ, थे हिस्सों-हर्कत, वे जान। मेरी सत्ता पाए बिना पत्ता नहीं हिल सकता, मुझ बिन सब दीमक की तरह सो जाता है। जली हुई रस्सी की तरह रह जाता है। काम बिगड़ने लगा, मैं किस को इलज़ाम दूँ, मेरे बिना और कुछ हो भी। ओ मौत! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म[1] को, मेरे और अजसाम ही मुझेकम नहीं। सिर्फ चान्द की किरणें चान्दी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी नालोंके भेस में गीत गाता फिरूँगा, बहरे-अमवाज[2] के लिबासमें लहराता फिरूंगा। मैं ही बादे-खुशखराम नसीमे-मस्ताना[3] गाम हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी

१ शरीर। २ समुद्र की तरङ्ग के वेश। ३ प्रातःकाल की सुगन्ध शीतल वायु।

हर वक्त रवानी में रहती है । इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुर्झाते पौदों को ताज़ा किया, गुलों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खटखटाया, सोतोंको जगाया, किसी का आँसू पूँछा किसी का घूँघट उड़ाया । इसको छेड़, उस को छेड़, तुझको छेड़ । वह गया, वह गया, न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया ।"

उपसंहार

किस की लेखनी में बल है कि ऐसे सच्चे देशभक्त आनन्द-रस से परिपूर्ण महानुभाव का चरित्र लिखे, स्वामि राम उन गिनती के महापुरुषों में हुए हैं कि जो थोड़े काल के लिये समय समय पर भारत को जगाने को ईश्वर की नीती-अनुसार आते हैं, और अपना जीवन सदा के लिये आदर्श छोड़ जाते हैं । यदि भारत वासी, चाहे गृहस्त, चाहे साधु, ऐसे महापुरुषों की पद्धी पर चलें, तो उनके आप भी आनन्द में रहने और औरों को आनन्दित करने में क्या सन्देह हो सकता है । हमारा यह कथन नहीं कि वर्तमान साधुओं में स्वामि राम ही ज्ञानी अथवा त्यागी हुए हैं । बहुत से महानुभाव जो इस असार संसार से चले गये और बहुत से जो अब विद्यमान हैं, उनसे त्याग वैराग्य और ज्ञान में अधिक हों, परन्तु ऐसे लोग देखने में कम आवेंगे जिन्हें इधर तो दोनों विद्याओं का बल हो, उधर देशभक्ति भी पूरी २ हो, और श्रीरामचन्द्र जी की नाईं अकारण वैराग्य हुआ हो । यह बात केवल स्वामी राम में ही देखने में आई । प्रायः दो प्रकार के साधु देखने में आते हैं, या तो वे जो त्यागी और ज्ञानी दोनों हैं, परंतु अपने ध्यान समाधि के आगे दूसरों के उद्धार की ओर ध्यान नहीं देते; या वे जो

केवल नाम मात्र या वेष मात्र से साधु है, और ऐसे बहुत हैं। भारत का इन दोनों में से किसी से भी कुछ उपकार नहीं हो सकता। वसिष्ठ भगवान कहते हैं कि यदि संसार में रागद्वेष और अंतःकरण की ग्रन्थियों से रहित साधु विद्यमान हैं, तो फिर तपदान और तीर्थों से क्या, ऐसे महात्मागणों का संग सन्मार्ग का दीपक और हृदय के अन्धकार को उड़ाने वाला है। यह सत्संग का ही प्रताप है कि जिससे पापी भी पुण्यशील हो मोक्ष का भागी हो सकता है, इसलिये जितना मान पूजा साधु का किया जावे, उतना थोड़ा है, परंतु साधु हो, अर्थात् अपने आचरण से साधुकारी–शुद्ध स्वभाव, ज्ञान–संपन्न, कार्य में तत्पर, देहाभिमान से रहित हो, अंदर देहाभिमान और ऊपर के शिवोहं का मुलम्मा न हो, वरन अंदर के शिवोहं ने देहाभिमान को जला दिया हो। ईश्वर से सदैव प्रार्थना है कि भारत के सारी साधु समाज शीघ्र ऐसी हो जावे कि जिससे वह सब भेद और द्वैत को दूर कर आत्मवत् सब को देखे; न केवल अभेदवादि किंतु अभेदकारी हो; अद्वैत को कथन मात्र न रक्खे किंतु वर्ताव में लावें; ज्ञान, आनंद, प्रेम, त्याग, वैराग्य के जैसे नाम धारण करती है वैसी हो जावे; हर प्रकाशानन्द ज्ञान, प्रकाश से स्वयं आनन्दित हो, और दूसरों को आनन्दित करें; हर सच्चिदानन्द सच्चित् स्वरूप में मग्न हो; हर आत्मप्रकाश अपने आत्मा को सब में देखे। धन्य होगा वह दिन जब ऐसा होगा।

ओं तत सत।